UNIVERSAL LIBRARY

OU_178709

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 84 B 58 K Accession No. G. H. 2843

Author बिड़ला, कृष्णनिवास

Title कहिये समझ विचारि १९४२

This book should be returned on or before the date last marked below.

कहिये समय विचारि

—विचार-प्रेरक लघु निबन्ध—

लक्ष्मीनिवास बिड़ला

भूमिका

वियोगी हरि

१९६२

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

दूसरी बार : १९६२
मूल्य
एक रुपया

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक के छोटे-छोटे नौ निबंध संग्रहीत किये गए हैं। ये सब निबंध बड़े सरल और सुबोध हैं। सामान्य शिक्षित पाठक भी इन्हें आसानी से समझ सकते हैं। इन निबंधों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये ऐसे विषयों पर लिखे गए हैं, जिनका संबंध सबके साथ, और सब समय, आता है।

ये रचनाएं पाठकों को सोचने के लिए पर्याप्त सामग्री प्रदान करती हैं। लेखक ने इन निबंधों में अपनी बात बहुत संक्षेप में कहकर अवसर पैदा कर दिया है कि पढ़नेवाले उस विषय पर गहराई से विचार करें।

हिन्दी में लघु निबधों की परिपाटी प्रायः लुप्त-सी हो गई है। ऐसी अवस्था में यह प्रकाशन पाठकों को एक सुखद प्रयास प्रतीत होगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

हम आशा करते है कि पुस्तक चाव से पढ़ी जायगी।

दूसरा संस्करण

पाठकों में इस पुस्तक ने इतनी लोकप्रियता प्राप्त की कि चंद महीनों में ही दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। इसमें तीन नये निबंध और शामिल कर लिये गए हैं तथा पहले के निबंधों में यत्र-तत्र कुछ और सामग्री जोड़कर प्रतिपादित विषय को और भी स्पष्ट कर दिया है। इस प्रकार अब निबंधों की संख्या बारह हो गई है। आशा है, पुस्तक का यह परिवर्द्धित संस्करण भी उसी चाव से पढ़ा जायगा।

—मंत्री

दो शब्द

साहित्य के विविध अंगों में निबन्ध अपना एक विशेष स्थान रखता है—कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि से कुछ निराला ही स्थान। भिन्न-भिन्न विषयों के अनुसार निबन्ध की शैली अलग-अलग प्रकार की होती है, और ऐसे ही, उनका शिल्प और भाषा भी। निबन्ध लम्बे भी होते है और छोटे-छोटे भी। विचारात्मक होते है और भावात्मक भी। ऐसे भी होते है, जो गहराई मे उतरने के लिए बाध्य करते है, और ऐसे भी, जो अपनी ओर सरलतापूर्वक खीच लेते है।

एक समय था, जब हिन्दी-साहित्य में निबन्ध बहुत कम थे, उंगलियों पर गिने जानेलायक। पर जो भी थे, उनमें अपनी एक मौलिकता थी, शैली और भाषा दोनों ही दृष्टियों से। धीरे-धीरे निबन्ध-लेखन की ओर झुकाव बढ़ने लगा, पर जितना चाहिए उतना नहीं। अच्छे-अच्छे लेखकों के, विविध विषयों के, निबन्ध सामने आये—कुछ तो अत्यन्त उच्चकोटि के। मगर सामान्य जनता की शैली और बोली में बहुत कम लिखे गये है, जिनसे कि वह लाभ ले सके। किशोर विद्यार्थियो की दृष्टि से उपयोगी निबन्धों की भी आवश्यकता मालूम होती है। 'कहिये समय विचारि' नामक इस छोटी-सी पुस्तक मे इसी कोटि के बारह निबन्ध हैं, जो इस आवश्यकता की पूर्ति में शायद कुछ हदतक सहायक हो सकते है।

पहले निबन्ध 'कहिये समय विचारि' में बताया गया है कि शब्द की भारी महिमा है, वाणी के अन्दर बड़ी ताकत है—बनाने की और बरबाद कर देने की भी। विश्लेषण किया गया है स्पष्ट, मीठी और चतुराईभरी बात का, जबकि वह मौक़े पर

और बिना मौक़े पर कही गई हो। मतलब यह कि बात करने की भी एक कला होती है।

दूसरे निबन्ध में 'कला' के बारे में लेखक ने कुछ विचार रखे हैं और यह माना है कि विज्ञान की बदौलत हर चीज़ की रूप-रेखा भी विद्युत्-गति से बदलती जा रही है, मगर मानव का अन्तस्तल नहीं बदला, वह आज भी 'सत्यम्', 'शिवम्' और 'सुन्दरम्' है।

'चौथो बल है दाम' में रुपये की कहानी का बहुत थोड़े में सार दिया गया है—मानो गागर में सागर भर दिया हो। अन्त में कहा है कि रुपया बहुत अच्छा गुलाम है, मगर बड़ा खतरनाक मालिक भी है।

'सत्य' शीर्षक निबन्ध में सत्य की महिमा का बखान लेखक ने अनेक पहलुओं से किया है और उसके समर्थन में कई सचोट उदाहरण दिये हैं।

फिर 'संतोष' का विश्लेषण किया गया है—उसके सही और ग़लत दोनों ही अर्थों में।

'सुख' और 'दुःख' पर भी अलग-अलग लिखा है। थोड़े में यह कि सुख बेहद तृष्णा में नही है, और दुःख वह चीज़ है, जो गिरते हुए को उठाता है और सोते को जगाता है। लेखक का विचार है कि जो आदमी दुःख की चलनी से छन गया, वह ईश्वर के बहुत निकट पहुँच गया।

एक निबन्ध में ईश्वर के अस्तित्व का, ऐसे सरल वैज्ञानिक तर्कों द्वारा, विवेचन किया गया है कि बहुत ऊहापोह में पड़ने की आवश्यकता नहीं रहती है। शंका करनेवाला अपनी शंका को ही पकड़ नहीं पाता, वह दांतों उंगली दबाकर स्वतः समाधान की ओर देखता ही रह जाता है।

एक निबन्ध अवतारवाद पर भी है, जो वैज्ञानिक दृष्टि से

लिखा गया है। इसमें सिद्ध किया गया है कि समाज को बाँधने-वाले धर्म की ग्लानि कभी बढ़ नहीं सकती; बढ़ी कि अवतार आया। क्षण-क्षण, दिन-दिन, अवतार होते हैं और होते रहेंगे।

पूँजी और पूँजीपति के बारे में कुछेक साफ़-साफ़ विचार रखने का लेखक ने प्रयत्न किया है। माना है कि सच्ची पूँजी मनुष्य का श्रम है और उद्योग के बिना उसका जीवन न तो अपने लिए और न समाज के लिए हितकर हो सकता है।

'नर बड़ा या नारायण', इस निबंध में भक्तिपूर्वक सरल तर्कों के साथ राम और कृष्ण के लीला-चरितों की तुलना करते हुए लेखक ने पूछा है कि इन दो में कौन अधिक लोकप्रिय हुआ है, और क्यों ?

अंतिम लघु निबंध 'सजग गुरु' प्रकृति की वैज्ञानिक पाठशाला में, जहाँ छुट्टी का नाम नहीं, क्षण-क्षण पढ़ाता ही रहता है, यदि विद्यार्थी के अंदर पढ़ने-सीखने की सच्ची साध हो।

ये निबंध एक ही समय के लिखे हुए नहीं हैं। कुछ तो काफ़ी समय पहले लिखे गए थे और कुछ हाल में, पिछले दिनों। विचारों को बहुत करके सभी निबन्धों में सीधे और साफ़ ढंग से लेखक ने रखा है, विषय को सादा, किन्तु सुन्दर चौखटे में कसने का प्रयत्न किया है और भाषा में बनावटीपन नहीं आने दिया। जगह-जगह उदाहरणों से निबन्धों को सजाने का काम खासा अच्छा हुआ है। पुराने विचारों को बिना तोड़े जो नये विचारों के साथ जोड़ा है, वह भी कलात्मक बना है। कुल मिलाकर इन छोटे-छोटे निबन्धों में कुछ ऐसी चीज़ है, जो पाठक को अपनी ओर खींच सकती है।

—वियोगी हरि

निबन्ध-सूची

१.	'कहिये समय विचारि'	९
२.	कला	२१
३.	'चौथो बल है दाम'	२८
४.	सत्य	३७
५.	सन्तोष	४३
६.	सुख	४८
७.	दुःख	५१
८.	ईश्वर	५४
९.	'सम्भवामि युगे-युगे'	६३
१०.	वह पूँजीपति !	६९
११.	नर बड़ा या नारायण ?	७३
१२.	सजग गुरु	८३

: १ :

'कहिये समय विचारि'

एक राजा बड़ा गुणग्राही था। दूर-दूर से बड़े-बड़े पंडित उसकी सभा में आते थे। एक दिन

एक पंडित राजा का नाम सुनकर आया। उसने तीन प्रश्न सभा के विद्वानों के सामने रखे--

१. दुनिया में सबसे महान् वस्तु क्या है ? २. वह कहाँ रहती है ? ३. वह क्या करती है ?

कोई भी जवाब न दे सका। एक कोने में एक नवयुवक बैठा था। वह सामने आया और जवाब देने की राजा से आज्ञा माँगी। आज्ञा मिलने पर उसने बताया :

१. सबसे महान् वस्तु है मुँह से निकली हुई बात २. यह सच्चे और वीर पुरुषों की ज़बान पर रहती है ३. इससे ऐसे-ऐसे काम बनते हैं, जो न तो बल से और न धन से सधने सम्भव हैं।

आगन्तुक पंडित को इस उत्तर से संतोष हो गया और राजा ने इस नवयुवक को अपना मंत्री बना लिया।

शब्द की निस्संदेह बड़ी महिमा है। ऋग्वेद के अनुसार शब्द में एक दैविक शक्ति है। सुमैरियन साहित्य के अनुसार 'शब्द' का अर्थ ही है--ईश्वर की शक्ति। नये टेस्टामेंट में उल्लेख है कि "आदि में था शब्द और शब्द था ईश्वर।"

वास्तव में शब्दों में जादू भरा रहता है। चाहे कोई घरेलू मामला हो या राष्ट्रीय, उसके सुलझाने में शब्दों से बड़ी मदद मिलती है।

बोली से ही अक्लमन्द और बेवकूफ़ का फ़र्क मालूम देता है। ज़बान से ही उच्च और नीच का पता चलता है। शिवाजी के समय कल्याण में एक नवाब का राज्य था। नवाब हिन्दुओं पर भाँति-भाँति के अत्याचार किया करता था। शिवाजी ने यह सुना तो नवाब पर एक दिन हमला बोल दिया। नवाब लड़ाई में मारा गया। नवाब की बेगम को पकड़कर प्रहरियों ने शिवाजी के सामने पेश किया। देखते ही शिवाजी ने झुककर आदाब किया और कहा, "मेरी मां जीजाबाई आप की तरह सुन्दर होतीं तो मैं भी खूबसूरत होता।" यह सुनते ही बेगम ही नहीं, उसके साथ पकड़ी गईं बांदियों और हरकारों सबकी आँखों में आँसू आ गये और मन से वे शिवाजी के गुलाम बन गये।

चैतन्य महाप्रभु ने सन्त-युग में भक्ति का मार्ग बताया। उनके समय में जगाई और माधाई नाम

के दो दुष्ट मनुष्य थे। सन्त की निर्मल वाणी के प्रभाव से उनका काया-पलट हो गया और वे साधु बन गये।

बातों द्वारा मनुष्य दूसरे पर प्रभाव डालता है। ज़बान एक पुल है, जिसपर होकर एक दिमाग़ दूसरे दिमाग़ में प्रवेश करता है। जब कुरुक्षेत्र में अर्जुन अपना कर्त्तव्य भूलकर शस्त्र त्यागकर बैठ गया तो श्रीकृष्ण ने शुरू में ज्ञान की बड़ी-बड़ी बातें न कहकर मन की दुर्बलता को त्याज्य बताते हुए देह की नश्वरता की ओर उसका ध्यान खींचा। कहा, "तुम मारने से डरते हो। किन्तु कौन किसे मारता है, और कौन मरता है? आत्मा तो अजर है, अमर है।" धीरे-धीरे अर्जुन को ज्ञान हुआ और वह युद्ध में खड़ा हो गया। यह शब्दों का ही तो चमत्कार था।

अथर्ववेद में आया है—"वाक् वदामि मधुमत्।" किन्तु शहद-भरे मीठे वाक्य से हमेशा काम बन ही जाता हो, ऐसा नहीं है, और न यह जरूरी है कि गम्भीर और न्याययुक्त बात से अनुकूल परिणाम निकल आता हो। उपयुक्त शब्दों के

साथ उपयुक्त अवसर भी चाहिए। वह निर्भर करता है सुननेवाले के मन के भाव पर। कृष्ण से ज्यादा कौन चतुर होगा, किन्तु दुर्योधन पर उनकी बातों का असर नहीं पड़ा और महाभारत का युद्ध नहीं टला।

अवसर पर की बात कहने के लिए थोड़ा मनोविज्ञान भी जानना ज़रूरी है।

कैकेयी बहुत समझदार थी। रामचन्द्र को मां की तरह प्यार करती थी। इतने पर भी मन्थरा दासी के वाक्-चातुर्य ने उसपर ऐसा असर डाला कि रामचन्द्र को वनवास भोगना पड़ा।

आवेश से अक्सर काम बिगड़ जाता है। चतुर वक्ता सदा आवेश को क़ाबू में रखता है। एक बार लन्दन में एक बैरिस्टर ने एक मामले पर बड़े ज़ोर से बहस की, किन्तु न्यायाधीश ने फ़ैसला उसके ख़िलाफ़ दिया। बैरिस्टर नौजवान था। उसके मुँह से निकल पड़ा, "कैसे ताज्जुब की बात है कि अदालत ऐसे फ़ैसले देती है!" न्यायाधीश ने तुरन्त मानहानि के लिए बैरिस्टर को नोटिस दिया

और मुकदमे की तारीख़ तय हो गई। उस समय लार्ड रीडिंग, जो बाद में हिन्दुस्तान के वाइसराय हुए, लन्दन में वकालत करते थे। उन्होंने जब यह क़िस्सा सुना तो बैरिस्टर की तरफ़ से पैरवी करने का भार अपने ऊपर ले लिया। न्यायाधीश के समक्ष बैरिस्टर पेश किया गया। लाई रीडिंग ने पैरवी शुरू की। उन्होंने कहा, "न्यायाधीश महोदय, यह बैरिस्टर अभी नौजवान है। मैंने समझा दिया है, अब वह आपके किसी भी फ़ैसले पर ताज्जुब ज़ाहिर नहीं करेगा।" सारा इजलास हँस पड़ा। बेचारा न्यायाधीश क्या करता! झेंपकर रह गया।

इस घटना से स्पष्ट है कि मौके पर छोटी-छोटी बातें भी बड़ा काम कर जाती हैं, जैसा कि सुकवि बिहारी के दोहे के बारे में कहा गया है, "देखत के छोटे लगें, घाव करें गम्भीर।" यह बात कभी-कभी पूरी घट जाती है।

रोम में जूलियस सीज़र का खून करनेवालों का मुखिया था ब्रूटस। शहर में ब्रूटस का बहुत सम्मान था और उसकी बातों पर लोगों का पूरा

भरोसा था। ऐण्टनी सीज़र का मित्र था। उसने ब्रूटस से दो शब्द कहने की आज्ञा माँगी। ब्रूटस को अपनी ताक़त का इतना ज्यादा भरोसा था कि उसने ऐसी तुच्छ बात नामंज़ूर नहीं की। किन्तु जब ऐण्टनी ने बोलना शुरू किया तो पासा ही पलट गया और जनता दौड़ पड़ी उल्टे ब्रूटस और उसके साथियों को क़त्ल करने।

मौक़े पर कही गई कटु बात कई बार प्रलयंकारी साबित हो जाती है। द्रौपदी के ताने ने महाभारत-युद्ध का बीज बोया और शूर्पनखा के ताने ने रावण की लंका ढाही, ख़ासकर स्त्रियों के तानों ने कितने ही युद्धों का सूत्रपात किया है। यह इतिहास-प्रसिद्ध है कि चितौड़गढ़ अभेद्य था। गहलोतवंशीय राणा रत्नसेन समृद्धिशाली था। एक दिन भोजन स्वादहीन बताने पर उसकी पटरानी ने ताना मारा कि पद्मिनी क्यों नहीं ले आते? फिर क्या था, राणा ने सन्थली राज्य पर आक्रमण करके पद्मिनी से विवाह कर लिया। पद्मिनी के कारण बादशाह अलाउद्दीन ख़िलजी से युद्ध हुआ, जिसमें चितौड़ के बड़े-बड़े योद्धा काम आये।

विद्वान् अंग्रेज़ लेखक जेम्स ब्राइस लिखते हैं, "शब्द मोहरे हैं, जिनसे अक़्लमन्द खेल खेलते हैं।"

गत विश्वयुद्ध में अंग्रेज़ों की हार-पर-हार हो रही थी। ऐसा ढंग था कि यूरोप पर हिटलर का एकछत्र राज्य हो जायगा। अंग्रेज़ों के पास लड़ने का सामान भी पूरा न था। लार्ड लोदियन को ऐसे समय अमरीका भेजा गया। यह जानी हुई बात है कि रूज़वेल्ट पर उन्होंने ऐसा प्रभाव डाला कि अमरीका से ज़ोरों से मदद मिलने लगी।

बिना निश्चयात्मक और शुद्ध बुद्धि से सोचे ठीक और सही बात कहना कठिन हो जाता है। एथेन्स में सुकरात पर मुक़दमा चलाया गया कि वह राज्य के बने हुए नियमों के ख़िलाफ़ नौजवानों को शिक्षा देता है। किन्तु जब सुकरात ने प्रश्न करने शुरू किये तो साबित यह हो गया कि नियमों का विरोध तो उल्टे मुक़दमा चलानेवाले करते हैं।

झूठी बातों से काम नहीं बनता। 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्' ही काम देता है। मशहूर फ्रांसीसी

राजदूत फ्रांसवा डी कैलियर ने लिखा है कि अच्छा राजदूत न तो झूठा विश्वास दिलाकर और न ऐसी प्रतिज्ञाओं से, जो कभी पूरी न हो सकें, काम बनाने की कोशिश करता है। यह मानना कि राजदूत ठगाई के बिना काम पूरा नहीं कर सकता, एक भारी भूल है।

पूर्णतया सच बात का भी कभी-कभी लोगों पर उल्टा असर पड़ता है। एक सज्जन चाहते थे कि उनके मित्र समझें कि वह बहुत ज़रूरी काम पर आये हैं। पार्टी के पश्चात् किसी पत्रकार से न रहा गया और वह पूछ ही बैठा, "महाशय, आज आप यहाँ कैसे?" जवाब मिला, और कितना सच, "यहाँ आने के लिए।" पत्रकार उत्सुकता न दबा सका और फिर प्रश्न कर बैठा, "किन्तु ऐसी कौन-सी इच्छा थी, जो आपको यहाँ घसीट लाई?" "मेरे मेजबान की कृपा और लोगों को देखने का कौतूहल।" पत्रकार बड़ा चिपटू था। फिर बोल उठा, "लेकिन यहाँ आज आपको क्या सफलता मिली?" तड़ाक से जवाब मिला, "फिर से आने का निमन्त्रण।" पत्रकार फिर भी नहीं माना और

उसने प्रश्न किया, "दुबारा कौन-से काम से आयँगे ?" आगन्तुक सज्जन भी उससे कुछ कम न थे, झट बोले, "अपने मित्रों की संगति का आनन्द लेने ।" अन्त में पत्रकार महाशय अपना-सा मुँह लेकर रह गये। जो प्रभाव आगन्तुक सज्जन डालना चाहते थे, वह पड़ गया ।

कई बार हाज़िरजवाबी से भी काम बन जाता है । एक बार एक हलवाई ने एक वकील को रास्ते चलते जा पकड़ा और कहा कि वह कुछ सलाह लेना चाहता है। हलवाई ने पूछा, "एक सज्जन का कुत्ता अक्सर मिठाई चुराकर खा जाता है। इसपर क़ानूनी कार्रवाई क्या हो सकती है ?" जवाब मिला, "आप कुत्ते के मालिक से पूरा पैसा वसूल कर सकते हैं ।" हलवाई ने खुश होकर कहा, "वाह, तब तो बात ही क्या है। आपका कुत्ता ही वह चोर है, जो कई बार मिठाई खा गया। उसके सात रुपये चुकाइये ।" वकील-साहब ने तुरन्त जवाब दिया, "मेरी सलाह की फीस के पन्द्रह रुपये होते हैं। आप खुशी से सात रुपये काटकर बाक़ी मुझे दे दीजिये ।" हलवाई अब

क्या उत्तर देता !

एक बार अदालत में प्रतिवादी के एक गवाह से पूछा गया, "क्या आप झूठ बोलना भी जानते हैं?" गवाह ने तुरन्त जवाब दिया, "जनाब, आपकी सिखाई हुई इस विद्या में मैं अभी निपुण नहीं हुआ।" सुनते ही हाकिम भी खिलखिला उठे और वकीलसाहब की ज़बान बन्द हो गई।

समय पर कही गई उपयुक्त बात बादशाहों की ज़बान भी बन्द कर देती है। कहते हैं, महारानी विक्टोरिया अपने प्रधान मंत्री ग्लैड्स्टन से खुश नहीं थीं। एक दिन किसी बात पर मतभेद हो गया और महारानी ने कहा, "जानते हो, तुम सम्राज्ञी से बातें कर रहे हो?" ग्लैड्स्टन ने तुरंत उत्तर दिया, "जी महारानीजी, याद रखिये, आपसे जनता बात कर रही है।" सम्राज्ञी को चुप हो जाना पड़ा।

कभी बड़ी बातों से काम नहीं बनता, पर दो शब्द का नारा बाज़ी मार देता है। सन् १९३१ में कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य की माँग पेश की। ब्रिटिश सरकार ने १९३५ में नया क़ानून बनाया।

देखने में लगता था कि मंत्री राज्य करेंगे, किन्तु वास्तव में सारी शक्ति वाइसराय के पास केन्द्रित थी। उन्होंने कहा कि पूर्ण स्वराज्य दे दिया।

सन् १९४२ के आन्दोलन में महात्माजी ने पूर्ण स्वराज्य का जवाब दिया—"भारत छोड़ो" के नये नारे से। सरकार का जवाब खत्म हो गया।

सन् १९६० के चुनाव के वक्त ब्रिटेन की मज़दूर पार्टी ने बड़े-बड़े शब्दों में अपनी नीति की घोषणा की। किन्तु कंज़रवेटिव पार्टी ने इसका जवाब छोटे-से नारे से दिया--"ऐसी समृद्धि कभी न थी।" कंज़रवेटिव जीत गये।"

विवेचन और अनुभव से वाणी में शक्ति आती है। आदिकाल से लेकर आजतक शब्द की शक्ति बरक़रार रही है, और जबतक बुद्धि से काम चलेगा, यह शक्ति अक्षय ही रहेगी। कवि की ये सूक्तियाँ बराबर सच्ची रहेंगी।

नीकी पै फीकी लगै, बिन अवसर की बात।

... ...

फीकी पै नीकी लगै, कहिये समय विचारि।

: २ :

कला

कला पर हज़ारों पुस्तकें लिखी गईं, लाखों पृष्ठों में कला की बारीकियाँ बताई गईं। इनको बिछाया जाय तो कलकत्ते के आर-पार एक अच्छी-सी सड़क बन सकती है। इतना होने पर भी कला की व्याख्या सही-सही, साफ़-साफ़ और सरल शब्दों में अबतक नहीं हो सकी।

मनुष्य के विकास का इतिहास बृहद् है। वही

कला के विकास और विस्तार का भी इतिहास है। मनुष्य केवल शरीर से ही जबतक मनुष्य कहलाता था, वनमानुष और मनुष्य में कोई भेद न था, तबतक कला नाम की कोई वस्तु न थी। किन्तु जिस दिन से मनुष्य मनुष्य बना, उसमें बुद्धि आई, उसी दिन कला का जन्म हुआ।

जिस दिन नौजवान ने ऊपर चारों तरफ़ नज़र घुमाई, प्रकृति की अनोखी सुन्दरता देखी, चिड़ियों की चहचहाहट सुनकर खुद भी वह नाच उठा, हाथियों की अलमस्ती देखकर खुद भी झूमने लगा, शेर की छलांग के साथ, भय से नहीं, किन्तु उसकी तेज़ी की नक़ल करके खुद छलांग मारने लगा, उसी दिन से कला का विकास शुरू हो गया। पहले शिकारी ने पत्थर का भाला बनाया। पहली गृहिणी ने तीन पत्थर रखकर चूल्हा बनाया। पहली नर्तकी ने मोर का नाच देखकर उसका साथ दिया। पहले बच्चे ने चिड़िया के साथ सुर मिलाया और उसी दिन सरस्वती का आह्वान कर दिया। दुनिया में जो कुछ भी बना-बनाया दीखता है, वह सारा या तो प्रकृति

द्वारा या कला द्वारा निर्मित है। कहते हैं, राजा विक्रमादित्य चौंसठ कला-निधान थे। हुनर हो या ललित कला, दोनों ही कला के अंग हैं। लोहा ढालकर मशीन बनानेवाला हो या पत्थर की मूर्ति बनानेवाला दक्ष शिल्पी, चाहे प्रयोगशाला में बैठकर रिसर्च करनेवाला वैज्ञानिक हो या अन्तर में गुदगुदी पैदा करनेवाला कवि, सभी कलाकार हैं।

असल में मनुष्य प्रकृति की सुन्दरतम सफलता का दिग्दर्शन है। प्रकृति प्रगतिशील है। वह बीती बातें नहीं दोहराती, बल्कि पुराने से नया और सुन्दर भाव निकालती है। उसी तरह मनुष्य की कृति पर अपने समय की तो छाप रहती ही है, पर वह नित-नये विचारों को भी रूप देता है।

कौशल और लालित्य, कला के इन दोनों अंगों के बिना मनुष्य का काम पूरा नहीं होता। किसी कवि ने कहा है :

साहित्यसंगीतकलाविहीनः
साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः।

सच है, बिना कला के पशु और मनुष्य में

कोई फ़र्क नहीं रहता ।

कलाविहीन मनुष्य कतिपय आनन्दमय क्षणों के रसास्वादन से वंचित रहता है। कला असत्य का पोषण नहीं करती, किन्तु सत्य का चित्रण करती है। कला मनुष्य की कृति तो है, किन्तु सफल होती है उस महती शक्ति की प्रेरणा से ही। कला बुद्धि को सान पर चढ़ा देती है । कला के पुजारियों में न काले-गोरे का भेद रहता है, न देश, काल और भाषा का। हिंसा और द्वेष से दूर हटकर मन शान्त हो जाता है। फिर अवचेतना के स्वप्नों में जब वह अनन्त में निर्बाध दौड़ लगाता है, तब सुख और दुःख, महत्ता और तुच्छता, आराम और तकलीफ़ सब छोड़कर, बस, उस सुन्दरतम एक राग में विभोर होकर आत्मा के अत्यन्त निकट पहुँच जाता है। कलाकार जितना ज़्यादा कल्पना-लोक में विचरण करता है, उतनी ही उसमें आगे बढ़ने की तत्परता आती है। आविष्कारों की बुनियाद कल्पना-क्षेत्र में ही पड़ी थी। कल्पना और क्रिया के सामंजस्य से ही कला की प्रगति होती है। कला की व्याख्या

यों कर देना असम्भव है, किन्तु जो इस गहरे में डुबकी लगाते हैं, वे ही इसे समझ पाते हैं।

यों तो पत्थर पड़े हुए सभी देखते हैं, किन्तु कलाकार की यह खूबी है कि उन पत्थरों में से हीरे को चुन लेता है और उसे काटकर चमकदार नग बना देता है। पर यह नहीं कि वह हीरे की चमक देखकर गुलाब की पंखुड़ी की कोमलता भुला देता है। उसे गुलाब की मधुर सुगन्ध भी उतनी ही पसन्द है, जितनी माणिक की दमक। वह तो गुणों का पारखी है।

कला-कौशल, देश में शांति और समृद्धि हो, तभी पनपते हैं। महाभारत में वर्णन आया है कि मय दानव ने पांडवों के लिए एक बड़ा अद्भुत महल बनाया था। उसमें जहाँ दरवाज़े नहीं थे, वहाँ दरवाज़ा मालूम पड़ता था, और जहाँ दरवाज़े थे, वहाँ सपाट दीवार दीखती थी। अज्ञातवास में अर्जुन ने नर्तकी का वेश बनाकर राजा विराट् की पुत्री उत्तरा को नाच सिखाकर एक साल बिताया।

कौटिल्य के समय में गान, वाद्य, नाच, पढ़ना,

खेलना, तस्वीर खींचना, सुगन्ध तैयार करना, माला गूँथना इत्यादि कला-शिल्प सिखानेवालों का भरण-पोषण राजा की तरफ़ से होता था। कहते हैं, राजा भोज के समय में शत्रु-सेना की गति-विधि देखने के लिए भोज का सैनिक गुब्बारे में बैठकर ऊपर उड़ता था। चूँकि गुब्बारे की चाल हवा पर निर्भर करती थी, इसलिए जिस दिशा में चाहे, उधर ले जाने के लिए गुब्बारे में छह या आठ चीलें जोड़ी जाती थीं, जो सैनिक के इशारों से गुब्बारे का रुख़ ठीक रखती थीं।

अब भी हज़ारों वैज्ञानिक देश के लिए प्रयोग-शाला में बैठे कला की आराधना करते हैं। आज दुनिया की रफ़्तार बहुत तेज़ हो गई है। जहाँ पहुँचने में बीसों दिन लगते थे, वहाँ कुछ ही घंटों में पहुँच जाते हैं। चन्द्रलोकतक जाने की तैयारी हो गई है। अमरीका में बिजली का एक ऐसा मस्तिष्क बना, जो बड़े-से-बड़े सवाल कुछ ही मिनटों में हल कर देता है। राकेट या अंतरिक्ष में जानेवाले यानों की गति-विधि के बारे में बड़े-बड़े हिसाब हल करने पड़ते हैं। यदि मनुष्य हल

करने बैठे तो उसे ३-४ वर्ष लगें। किन्तु यह मस्तिष्क ऐसे सवाल दो-तीन दिनों में ही हल कर देता है।

अणु का विभाजन और संयोजन, दोनों विधियाँ, वैज्ञानिकों ने खोज निकालीं। खोजनेवालों के दिल हिंसा से बहुत दूर थे, किन्तु दोनों विधियों का उपयोग हुआ अणुबम बनाने में ! बहुत बार कला से कला नष्ट करने का काम भी लिया जाता है, तब भी बिना कला के मनुष्य की प्रगति नहीं हो सकती। आत्मा को खुराक कला से ही मिलती है। लालित्यमय लेख हों या चतुर चितेरे के सजीव चित्र, चाहे कठिन रोग के कीटाणु मारने-वाली ओषधि हो या कोबाल्ट अणु का विस्फोटन, यह प्रगति रुकी तो मनुष्य का अन्त ही मानना चाहिए।

विचारों का आदान-प्रदान हर देश से बढ़ गया। हर वस्तु में विशेषता की चाह बढ़ गई। भाव बदलता जा रहा है, रूप-रेखा भी विद्युत्-गति से बदल रही है। किन्तु अन्तस्तल नहीं बदला। आज भी वह है 'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्।' इसे समझनेवाले मर्मज्ञ ही इस गति में साथ दे सकेंगे।

: ३ :

'चौथो बल है दाम'

युधिष्ठिर को शर-शैया पर से उपदेश देते हुए भीष्म पितामह ने कहा था, "राजा धान्य आदि वस्तुओं में से छठे भाग का कर ग्रहण करे।"

फिर युधिष्ठिर से उन्होंने कहा, "तुम्हारा धान्य-गृह प्रचुर अन्न की राशि से सदा भरा-पूरा और उत्तम सेवकों से सुरक्षित रहे।"

उस समय धन की परिभाषा थी धान्य, फल और फलनेवाले वृक्ष, पशु, ढोर, इत्यादि। वह अदला-बदली का युग था। आपस का लेन-देन वस्तुओं के द्वारा ही होता था। रघु के पास अन्न है, उसे चाहिए कपास। धन्ना के पास कपास तो है, किन्तु अन्न भी काफ़ी है, उसे तो जूतों के लिए चमड़े की ज़रूरत है। उसने रघु से यदि अन्न लेकर कपास दे दिया तो रघु का काम बन गया, नहीं तो दोनों की माँग बाक़ी ही रह गई। न तो रघु को कपास मिला, न धन्ना को चमड़ा।

छोटे गाँव में पाँच-सात घर थे। उनसे काम

पार न पड़ा तो धन्ना कपास लेकर दूसरे गाँव गया, लेकिन वहाँवालों ने भी कपास लेना अस्वीकार किया तो धन्ना बिना जूते के ही रह गया। इस तरह अड़चनें आने लगीं और आपसी व्यवहार में रुकावटें होने लगीं। किसीने सोचा कि क्यों न गाय की क़ीमत निर्धारित की जाय? एक गाय के बदले २५ मन गेहूँ या ५० गज़ कपड़ा। यह हुआ मुद्रा का पहला रूप।

. देवर्षि नारद ने महाराजा शशविन्दु के अश्वमेध-यज्ञ का वर्णन करते हुए कहा था, "प्रति हाथी के साथ एक सौ रथ और हरेक रथ के साथ एक सौ उत्तम घोड़े थे, हरेक घोड़े के साथ सौ गायें और प्रति गऊ के साथ एक सौ बकरे और मेढ़े नियुक्त थे। यह अपार धन महाराजा शशविंदु ने ब्राह्मणों को दान किया था।"

इसी तरह महाराजा गय के दान का भी वर्णन मिलता है। कहते हैं, "महाराजा गय ने पृथिवी पर जितने बालू के कण दीख पड़ते हैं उतनी ही गऊएँ ब्राह्मणों को दान में दे दीं।"

एक ऋषि ने गुरुदक्षिणा में एक हज़ार गायें

शिष्य से माँगीं और शिष्य ने धन उपार्जन करके इतनी गायें गुरु को समर्पण कीं ।

गऊ का चलन था, इसलिए गुरु ने गो-दक्षिणा माँगी और शिष्य ने वही दी । रुपया वस्तुओं का अदल-बदल करने के लिए माप-दण्ड है । माप-दण्ड होने के सिवा रुपये में दो गुण और होने चाहिए, एक तो लेन-देन में, दूसरे रखने की सुविधा । गाय को रुपया माना जाय तो रहने के लिए खलिहान और रोज़ खिलाने के लिए भूसा भी चाहिए । यदि कोई धनवान् हुआ और उसके पास कई गायें जमा हो गईं तो उनकी सार-सम्हाल के लिए नौकर की भी ज़रूरत हो गई । कहीं दुर्भाग्य से महामारी आ गई तो सारा धन ही खत्म हो गया ।

संस्कृत-साहित्य में एक शब्द आता है 'पंचगु' । इसका अर्थ है, पांच गायें देकर खरीदा हुआ । अंग्रेज़ी में पिक्यूनियरी (Pecuniary) शब्द आर्थिक विषय के लिए आता है । यह लेटिन के शब्द पिक्यूनिया (Pecunia) से बना है, जिसका अर्थ है गाय, बैल इत्यादि । इससे ज्ञात होता है कि पशु-रुपया पाश्चात्य देशों में भी प्रचलित था । वहाँ भी बकरी

या गाय से वस्तुओं का लेन-देन होता था।

पशु-रुपयों की तकलीफ़ों को दूर करने के लिए सिक्कों का चलन जारी हुआ। पहले सिक्के सोने के बने। स्वर्ण-मुद्रा का उल्लेख पुरानी कहानियों में तथा इतिहास में आता है। चूंकि सोने से क़ीमती और कोई धातु थी नहीं, अतः सिक्के सोने के बनने लगे। जवाहरात एक माप के नहीं होते थे, लेकिन सोने में यह गुण है कि उससे एक माप के सिक्के बन सकते हैं। स्वर्ण-मुद्रा का मूल्य ज्यादा होने के कारण छोटे सिक्कों की ज़रूरत पड़ने लगी और कुछ चांदी के और ज्यादा तांबे के सिक्के भी बनने लगे। दमड़ी भी तांबे की बनी।

सिक्के निकाले राजा ने। मुद्रा का मूल्य तौल और धातु पर निर्भर करता था। राजा की ही बात पर ऐसा विश्वास हो सकता था, इसलिए मुद्रा का चलन भी एक राजकीय काम हो गया। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय मुद्रा निकालना और उसकी देखभाल जिस अमात्य के जिम्मे थी, वह 'लक्षणाध्यक्ष' कहलाता था।

सोना सबसे क़ीमती इसलिए हुआ कि वह बहुत कम मिलता था। हर वस्तु की क़ीमत उसके उत्पादन और माँग पर निर्भर करती है, वैसे ही सोने की क़ीमत भी।

सिक्के की क़ीमत घटती है या तो धातु की क़ीमत के साथ, या वस्तुओं के उत्पादन के साथ। अन्न, वस्त्र का उत्पादन कम हुआ तो इनके दाम बढ़ गये, मुद्रा की क़ीमत घट गई। इसी तरह यदि अन्न, वस्त्र की पैदाइश बढ़ी तो मुद्रा की क़ीमत बढ़ गई।

देश में आबादी अभी बढ़ी न थी। ज़रूरत से ज्यादा ज़मीन लोगों के पास थी। धन-धान्य की कमी न थी। मुद्रा या पीछे मोहर की क़ीमत ज्यादा रही। छोटे सिक्कों की ज्यादा ज़रूरत पड़ती थी। यों तो कौटिल्य के ज़माने में रौप्य मुद्रा या रूपिका चालू हो चुकी थी, पर शेरशाह ने पहले-पहल आज का रुपया चलाया। केवल रुपये की सूरत बदल गई, किन्तु चलन अबतक उसीका है।

उधर पाश्चात्य देशों में राजसत्ता जैसे-जैसे

मजबूत बनी और राजा का विश्वास लोगों में बढ़ा कि वहाँ काग़ज़ के नोट भी चल पड़े और वही सिक्कों का काम देने लगे। हाँ, शुरू-शुरू में नोटों के बराबर खज़ाने में सोना-चाँदी ज़रूर रखा जाता था। राजसत्ता पर ज्यों-ज्यों विश्वास बढ़ा, खज़ाने में धीरे-धीरे सोने की मात्रा कम होती गई। प्रथम विश्व-युद्ध के बाद जर्मनी के पास सोना बिल्कुल नहीं रह गया, तो उन्होंने देश के कारखानों को अमानत मानकर नया सिक्का निकाला। किन्तु सबसे पहले नोट निकालने का श्रेय चीन को है। आज से २३०० वर्ष पूर्व चमड़े के, उसके पश्चात् २१५० वर्ष पूर्व काग़ज़ के नोटों का चलन वहाँ हो गया था।

यहाँ बढ़ने लगी आबादी। उपज आबादी के पैमाने पर ज्यादा बढ़ी नहीं, किन्तु जितनी थी वह ज्यादा आदमियों में बटने लगी तो भाव बढ़े। यानी वस्तुएँ कम हो गईं, इसलिए वस्तुओं के दाम बढ़े और सिक्कों की क़ीमत कम हो गई। पैदाइश और कमी के हिसाब से क़ीमत घटती-बढ़ती है।

सिक्का चाहे सोने का हो, चाहे चांदी या तांबे का, उसका उपयोग वस्तुओं के लेन-देन का ही है। उसके बदले चाहे उपयोग की वस्तुएँ खरीदी जायँ, उसे व्यापार, कल-कारखानों के लिए उपयोग में लिया जाय, तभीतक उसकी क़ीमत है। यदि सिक्का जमा करके रखा जाय और उसका कोई उपयोग न हो तो उसकी कोई कीमत नहीं।

कवि वृन्द ने कहा है :

सरस्वति के भण्डार की, बड़ी अपूरब बात;
ज्यौं खरचै त्यों-त्यों बढ़ै, बिन खरचे घट जात।

यह बात लक्ष्मी के भण्डार पर भी लागू होती है। सदुपयोग से लक्ष्मी का भण्डार बढ़ता है और दुरुपयोग से घटता तो है ही, खत्म भी हो जाता है।

दरअसल रुपया है मनुष्य की मेहनत। मेहनत चाहे शारीरिक हो या मस्तिष्क की, धन मेहनत ही पैदा करती है, और सिक्का है उसका माप-दण्ड। बिना मेहनत न तो धन पैदा होता है, न उसका प्रतीक रुपया मिलता है।

सिक्के का चलन होते ही राज-कर भी सिक्के के रूप में दिया जाने लगा। चूंकि पहले-पहल खेतों में पैदा होने पर राजा को अनाज दिया जाता था, ज़मीन पर कर लगाया गया। किसान अनाज बेचकर सिक्के राजा की भेंट करने लगे।

जैसे सूर्य समुद्र से पानी शोषकर वापस वर्षा करता है, महाराजा दशरथ भी कर लेकर वापस प्रजा पर वर्षा करते थे। लेकिन अब तो कोई ऐसी वस्तु नहीं छूटी, जिसपर कर न हो।

मुद्रा-चलन का उपयोग अब देशों में चीज़ों के दामों में कमी-बेशी करने के लिए भी होने लगा है। इस शास्त्र में अब इतना अनुभव हो गया है कि भाव घटाने-बढ़ाने में इसके ज़रिये काफ़ी हेर-फेर किया जा सकता है। यदि रुपये चलन में कम कर दिये जायँ, यानी रुपये महँगे कर दिये जायँ तो चीज़ों के भाव घटेंगे और यदि चलन में रुपये बढ़ा दिये जायँ, यानी लोगों को रुपये ज्यादा मिलने लगें तो चीज़ों के दाम बढ़ेंगे।

ब्याज की दर घटा-बढ़ाकर या बैंकों से रुपया उधार देने में रोक लगाकर व्यापार और

उद्योग पर भी असर डाला जा सकता है। ब्याज की दर घटा-बढ़ाकर विनिमय करने में भी सुभीता किया जाता है। पिछले दिनों ब्रिटेन को विनिमय करने में तकलीफ़ आई तो उन्होंने ब्याज की दर बढ़ा दी और बाहरी देशों में उन्हें काफ़ी रुपये मिल गये और कुछ अर्से के लिए उनकी दिक्कत दूर हो गई।

कहते हैं, रुपया बहुत अच्छा गुलाम है, मगर बड़ा खतरनाक मालिक भी है। यदि सावधानी न रखी गई तो अपने पैदा करनेवाले को ही यह खत्म कर देता है।

यह है दाम और दमड़ी की कहानी। दाम के बल का इतिहास विशाल है। इस बल से बहुत से काम सधते हैं। किन्तु इससे काम न बना तो निराश के लिए सूरदासजी ने बता ही दिया है :

अप-बल, तप-बल और बाहुबल,
चौथो बल है दाम।
सूर किशोर-कृपा ते सब बल,
हारे को हरिनाम।
सुने री, मैंने निर्बल के बल राम।

: ४ :

सत्य

रघुकुल-रीति सदा चलि आई ।
प्रान जाय बरु बचनु न जाई ।।

सत्यप्रतिज्ञ राम पिता की मृत्यु की भी चिन्ता त्याग पिता के वचन की रक्षा के लिए वन को चल पड़े । वचन भी ऐसा निभाया कि लंका जीतकर भी लंका नगरी के अन्दर नहीं गये । लौटे तो चौदह साल बाद ही अयोध्या लौटे ।

'सत्य' शब्द का अर्थ है 'रहनेवाला' । सत्य सदा सत्य ही रहता है । इसकी कभी क्षति नहीं होती । पहले भी सत्य सत्य ही था, आज भी सत्य ही है और भविष्य में भी सत्य ऐसा ही रहेगा । महाभारत में इसीलिए कहा है, "सत्य परब्रह्म है ।" महात्मा गांधी भी ऐसा ही मानते थे, "सत्य ही ईश्वर है ।"

एक-दूसरे के साथ व्यवहार वचन द्वारा ही होता है । किन्तु केवल मुहँ से कहे गये वाक्य पर ही सत्य निर्भर नहीं है । मन, वचन और कर्म

तीनों से जब सत्य का आचरण हो, तभी सत्य प्रतिष्ठित रहता है। युधिष्ठिर ने हाथी मारकर 'अश्वत्थामा हतः, नरो वा कुंजरो वा' दबी ज़बान से कहा। नतीजा यह हुआ कि उनका रथ, जो ज़मीन से ऊँचा चलता था, औरों की तरह ज़मीन पर चलने लगा। हिमालय पर महाप्रयाण के लिए गये तो हाथ की छोटी अंगुली गल गई।

अंग्रेज़ विचारकों ने कहा है कि सर्वोत्तम पॉलिसी याने नीति है सच्चाई (Honesty is the best policy)। किन्तु हमारे शास्त्रज्ञ इससे कहीं आगे की बात कह गये हैं। उनके अनुसार सत्य से परे धर्म ही नहीं है। जो सच्चाई को पॉलिसी मानकर चलता है, उसका असत्य आचरण तो पहले ही हो गया। प्रकृति जैसे प्रगतिशील है, सत्य भी उसी तरह प्रगतिशील है। यह रूढ़ि की लकीर नहीं। जो एक लकीर को ही सत्य मानकर बैठ जाता है, वह झूठ को सत्य बनाना चाहता है।

आत्मा दिन-दिन आगे बढ़ने की कोशिश करनी है, और उसे हम यदि झूठे आवरण से ढक न लें, तो वह खुद-बखुद सत्य-प्रदर्शन करती रहती

है। ईसाई सन्त एवर मोड ने कहा है कि सत्य तो हमारे साथ ही जन्म लेता है। इसे काटकर फेंकने के लिए हमें प्रकृति से युद्ध करना पड़ेगा। हाफ़िज़ ने कहा है कि सत्य तो गुलाब की तरह कँटीली डाल पर उगता है।

पर सत्य-पथ पर चलनेवाले न तो प्रकृति से युद्ध करते हैं और न गुलाब-जैसे फूल की कोमलता और सुगन्ध पाने के लिए उन्हें काँटों का भय रहता है। ईसा ने तो काँटों का ताज ही धारण कर लिया था।

सत्य के लिए किसी तैयारी की ज़रूरत नहीं पड़ती। झूठ तो बनाना पड़ता है। जो सत्य पर निछावर होता है, उसका नाम इतिहास के पट पर रह जाता है। बड़े-बड़े राजाओं की तो बात ही क्या, जुलाहे के घर जन्म लेकर कबीर अमर हो गये। चमार के यहाँ जन्म लेकर रैदास ब्राह्मणों से कहीं अधिक पूजित हुए।

पुरानी बात न लेकर इसी ज़माने में सत्य-पथ से विचलित होनेवालों में मुसोलिनी, हिटलर और स्टालिन का नाम तो सामने ही है।

स्टालिन की गद्दी पर बैठनेवालों ने ही स्टालिन की धजा उखाड़ दी ।

महाभारत के 'शान्ति-पर्व' में नारदजी का यह कथन आता है :

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत् ।
यद् भूतहितमत्यन्तं एतत्सत्यं मतं मम ॥

महाभारत-युद्ध राज्य के निमित्त हुआ। युद्ध न हुआ होता तो सिवा पांडवों के औरों की भलाई तो सम्भव ही थी । कम-से-कम लाखों की जीवन-रक्षा तो निश्चित ही थी । अर्जुन ने जब सगे-सम्बन्धियों को लड़ाई के मैदान में देखा तो लड़ने से आनाकानी भी की । उसने कहा :

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥

—"यद्यपि ये सब लोग हमें मारने के लिए खड़े हैं, तब भी, तीनों लोकों के लिए भी, मैं इन्हें नहीं मारना चाहता । पृथिवी की तो बात ही क्या !"

किन्तु कृष्ण ने क्या यह बात मानी ? उन्होंने कहा—"यह तुम्हारी दुर्बलता है । इसे छोड़ो और युद्ध करो ।"

सत्य के आचरण पर ही सत्य निर्भर करता है। युद्ध की तैयारी दोनों तरफ़ कौरवों और पांडवों ने की। सारे सम्बन्धी और मित्र दोनों तरफ़ जुटे। रण में युद्ध करना क्षत्रिय का धर्म है और विमुख होना अधर्म और असत्य है। ऐसे समय लाखों की जीवन-हानि भी हो तो भी युद्ध ही सत्य माना गया।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।

यदि न बोलने से छुटकारा मिलता हो तो ठीक है। शेक्सपियर ने भी लिखा है, "विचारों को ज़बान पर न लाओ।" (Give thy thoughts no tongue), किन्तु विचार यदि प्रकट करने ही पड़ें और मौन से छुटकारा न मिले तो सत्य के लिए अप्रिय भी कहना पड़ता है।

हिमालय पर अर्जुन पहुँचा तपस्या करने और भगवान् शंकर से पाशुपत अस्त्र लेने। शंकर ने भक्त की परीक्षा लेने की ठानी। मायावी शूकर पर अर्जुन और किरातराजरूपी शंकर, दोनों ने एक साथ बाण छोड़े। किरातराज की सेना शूकर को उठा ले जाने के लिए पहुँची। उधर अर्जुन अकेला। वाद-विवाद से बात शुरू हुई। अप्रिय

का जवाब अप्रिय न दे तो मन की बात एक, और वाणी से दूसरी, बात असत्य मानी जायगी। भारवि कवि आख़िर अर्जुन से कहलवाते हैं :

"कहाँ मुझ-जैसा वर्णाश्रम-धर्म की रक्षा करने में योग्य और कहाँ निकृष्ट जाति के जीवों की हिंसा में तत्पर तुम्हारा स्वामी ! नीचों के साथ उच्च व्यक्तियों की मित्रता नहीं होती, क्योंकि हाथी शृगालों से मैत्री नहीं कर सकता।"

सत्य निबाहने के लिए मन, वचन और कर्म तीनों से सत्य व्यवहार करना पड़ता है और सत्य-व्यवहार के लिए सत्य का अन्वेषण ज़रूरी है। इस इतने बड़े ब्रह्माण्ड में मनुष्यों की हस्ती ही क्या है ? फिर सब मनुष्यों की समझ और बुद्धि भी एक-सी नहीं होती। किन्तु हरेक को सत्य किसी-न-किसी पहलू से दीख ही जाता है और अन्वेषणशील झूठ और सच को समझ लेता है। सत्यगामी वास्तविकता को देखकर, बिना द्वेष और आसक्ति के, उसका यथार्थ रूप समझता है और यथार्थ का ही अनुसरण करता है। ऐसे मनुष्य

: ५ :

संतोष

सभी कहते आ रहे हैं कि सुख सन्तोष में ही है, "सन्तोषः परमं सुखम् ।" सन्तोष एक ऐसी अवस्था है, जिसमें मनुष्य अपनी वर्तमान दशा में ही सुख अनुभव करता है । किन्तु शारीरिक दशा क्या बराबर एक-सी रहती है ? पतझड़ के बाद नये पत्ते आते हैं । वसन्त के बाद ग्रीष्म ऋतु आती है। सुख और दुःख की जोड़ी है । एक-सी दशा पर भरोसा करना प्राकृतिक नियम के विरुद्ध है। शास्त्र, विज्ञान और अनुभव सभी कहते हैं कि दशा या तो बिगड़ती है या सुधरती है ।

अंग्रेज़ विद्वान् कार्डिनल न्यूमैन ने लिखा है, "उत्पत्ति से ही जीवन का आभास होता है। बिना उत्पत्ति के जीवन ही नहीं।" और उत्पत्ति के बाद विनाश, यह अकाट्य है। उत्पत्ति बिना कर्म के हो नहीं सकती । दुनिया में यह स्वाभाविक ही है कि हर काम की उच्चता दिखाने के लिए मनुष्य

एक नीति-सूत्र बना लेता है । इसी तरह अकर्मण्यता का पृष्ठपोषण करने के लिए लोग अक्सर मलूकदास का सहारा यों लेते हैं :

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम ।
दास मलूका यों कहैं, सबके दाता राम ।।

अजगर भूखों नहीं मरता, न पंछी ही भूखों मरते हैं, यह तो सही है। किन्तु यह भी तो सत्य है कि सूर्योदय से पंछियों की जमात खाना खोजने की तपश्चर्या शुरू कर देती है, जो सूर्यास्त तक जारी रहती है ।

संत मलूकदास संतोष करके हाथ-पर-हाथ रखकर अकर्मण्य बनने का उपदेश नहीं दे गये । उनके जीवन से ही ज़ाहिर है कि उन्होंने जीवन-भर चाकरी ही की। थककर भी श्रम करना नहीं छोड़ा। पत्थर ढो-ढोकर उन्होंने धर्मशाला बनाई, बाँध बाँधकर तालाब बनाये और मृत्यु-पर्यन्त कुछ-न-कुछ करते ही रहे। पर अपने-आपको कर्त्ता नहीं माना, कर्त्तापन का अभिमान नहीं किया ।

मनुष्य में महत्त्वाकांक्षा का होना अच्छा ही होता है । बिना आकांक्षा के कोई आगे नहीं बढ़

सकता। जितना काम अपनी शक्ति से बन पड़ता है, उतनी ही आकांक्षा फलीभूत होती है। यह सच है कि दूसरे की शक्ति से कोई ऊँचा नहीं चढ़ सकता। किन्तु कुछ लोग, जो आलस्य में पड़े रह जाते हैं, अक्सर आलस्य को छिपाने के लिए तुलसीदासजी तक को लपेट लेते हैं। तुलसीदासजी ने मंथरा के मुँह से कहलाया है :

कोउ नृप होहि हमहिं का हानी।
चेरी छाँड़ि न होउब रानी॥

लेकिन यही मन्थरा चाहती थी एक की राजगद्दी छीनना और दूसरे को गद्दी पर बैठाना। यह काम भी उसने एक रानी के द्वारा ही कराया। फिर मन्थरा को 'चेरी' कैसे कहें, वह तो रानी पर भी हुक्म चलानेवाली हो गई ?

अर्जुन ने पूछा तो गीता में श्रीकृष्ण ने कहा :

तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते।

अर्थात्—कर्म-त्याग की अपेक्षा कर्म करना ही अच्छा है।

ग्रीक विद्वान् अरस्तू से पूछा गया तो उसने

भी बताया, "कर्म की अपेक्षा अकर्म को अच्छा कहना भूल है।"

चन्द्रमा पृथिवी की प्रदक्षिणा करता है। पृथिवी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है। नौ ग्रह नहीं, अड़तीस ग्रह दूरबीन से देखे जा चुके हैं, और वे अपनी-अपनी परिधि में घूमते हैं। सूर्य भी अपने से बड़े ब्रह्माण्ड के सूर्य की परिक्रमा करता है, यहाँतक कि पृथिवी का एक-एक अणु भी स्पन्दन करता रहता है।

तो फिर 'सन्तोषी सदा सुखी' कैसे हो गया? इसका निबटारा महाकवि भास ने किया। वह कहते हैं, "कर्म करने में मूर्ख और ज्ञानी मनुष्य का शरीर तो एक-सा ही है, किन्तु बुद्धि में भिन्नता रहती है।" भास के मतानुसार संतोष बुद्धि से होता है, न कि कर्म का त्याग करने से। व्यवहारतः मनुष्य कर्म करना बन्द भी करदे तो भी शरीर काम करना नहीं छोड़ता, यदि छोड़ दे तो मृत्यु ही है। प्राण का अर्थ वायु होता है। वायु कभी अचल नहीं रहती, उसका तो स्वभाव ही चलना है।

गीता में श्रीकृष्ण ने सार बता दिया :

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

बिना फल की इच्छा किये कर्म करने का तुझे अधिकार है । मतलब यह कि सन्तोषपूर्वक कर्म करना ही श्रेयस्कर है ।

मलूकदास और तुलसीदास के कहने का भी यही आशय है ।

गीता में सन्तोष की यही परिभाषा है :

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः ।
मय्यर्पित मनोबुद्धिर्योमद्भक्तः स मे प्रियः ।।

अर्थात्––जो संयमी और दृढ़निश्चयी है, जिसने अपने मन और बुद्धि को मुझपर अर्पण कर दिया है, वह सदा सन्तुष्ट कर्मयोगी भक्त मुझ-को प्यारा है ।

संतोष की मुट्ठी बन्द करने पर लालच बालू की तरह अंगुलियों में से फिसलकर गिर पड़ता है ।

ऐसे ही संतोष की अवस्था में पूर्ण सुख है, और संतोष की यही सच्ची व्याख्या है ।

: ६ :

सुख

सुख की कोई परिभाषा नहीं बनी । न यही बताया जा सकता है कि सुख किसे कहते हैं और वह कैसे मिलता है ।

किसीने बताया कि सुख प्रियतम के प्रेम में है । शायर ने कहा, "ज़िन्दगी की काली रात में प्यार ही एक चिराग़ है ।" पतंगा शमा से प्रेम करता है, प्यार से उसके पास जाता है, एक क्षण भी प्यार का सुख ले कि जलकर खाक हो जाता है । प्रियतम के प्यार में विरहिणी का हाल कवि बिहारी ने इन शब्दों में बताया है :

बिरह-ज्वाल जरिबो लखै,
मरिबो भयौ असीस ।

किसीने बताया कि सुख प्रियतम के प्रेम में

तो है, किन्तु वह प्रियतम है दूसरा ही। उसकी भक्ति में ही सुख है। सुदामा से बढ़कर कृष्ण का कोई प्रिय और भक्त नहीं, किन्तु चल पड़ा दो मुट्ठी चावल लेकर द्वारका में कृष्ण का द्वार खटखटाने !

भूखे भगति न होइ गोपाला।

दूसरे ने बताया कि आखिर सुदामा-जैसे संतोषी को भी द्वारका जाकर ही सुख मिला। आशय यह है कि सुख तो एक लक्ष्मी ही प्रदान करती है।

दस हज़ारवाले ने कमाकर बीस हज़ार इकट्ठे कर लिये तो बहुत सुखी हो गया, किन्तु वापस पन्द्रह हो गये तो दुःख का पहाड़ टूट पड़ा। दस से तो पन्द्रह भी ज़्यादा ही हैं।

किसी कवि ने लिखा है :

निःस्वो वष्टि शतं शती दशशतं,
लक्षी सहस्राधिपो,
लक्षेशः क्षितिराजतां क्षितिपतिः,
चक्रेशतां वाञ्छति।

दस से सौ और सौ से सहस्र, सहस्र से लक्ष,

और लक्ष से क्षितिपति, यों तृष्णा बढ़ती ही गई, तो फिर लक्ष्मी से भी सुख नहीं।

सुना कि लक्ष्मी तो पद के साथ, सत्ता के साथ रहती है। सुख भी राज-सत्ता ही देगी।

इन्द्र का आसन तो प्रायः डगमगाता ही रहता है। जहाँ किसीने तपस्या शुरू की कि इन्द्र भगवान् डरे कि मेरा आसन छिना और चल पड़े तप में विघ्न डालने। राम-राज्य करनेवाले मर्यादा-पुरुषोत्तम राम के न तो पिता का अन्त शान्ति से, सुख से, हुआ और न वह स्वयं सीता के वियोग में सुखी रहे।

कवि ने आगे फिर कहा है :

चक्रेशः सुरराजतां सुरपतिः,
ब्रह्मास्पदं वाञ्छति।
ब्रह्मा विष्णुपदं हरिः शिवपदं,
तृष्णावधिं को गतः॥

जब इन्द्र ब्रह्मा का, ब्रह्मा विष्णु का और विष्णु शिव का पद प्राप्त करने की तृष्णा नहीं छोड़ते, तो फिर राजशक्ति में भी सुख कहाँ से आया!

: ७ :

दुःख

दुख में सुमिरन सब करें,
सुख में करै न कोय।

दुःख और सुख ये दो पहलू हैं। दुःख सुख है, और सुख दुःख, यह तो माननेवाले पर निर्भर करता है।

झूठ, सच तौलने का पलड़ा है। दुःख मनुष्य की कसौटी है। बहादुर की बहादुरी इसीमें मालूम पड़ती है। कायर को यही कायर साबित करता है। उद्योगी का यही यश फैलाता है। इसी-

से मनुष्य हिम्मत का पाठ पढ़ता है ।

सम्पद्, आनन्द और सफलता, सब मोटे तारों से छिदे-गुँथे रहते हैं। इनमें से पार निकलना बहुत सरल है । पर दुःख मकड़ी के जाले से भी सूक्ष्म तारों से गुँथी हुई चलनी है, जिसमें से सबकुछ नहीं छन सकता । इसके पार तो सूक्ष्म वस्तु ही निकल सकती है ।

दुःख एक घाव है, जिससे दिन-रात खून बहता रहता है, और जो केवल प्यार के मरहम से ही बन्द होता है, मगर फिर बहने के लिए। किन्तु इसमें पीड़ा नहीं होती ।

हँसी-खुशी अनित्य हैं, इसलिए दुःख का ओहदा उनसे कहीं बढ़कर है । दुःख सुख से अच्छा राग सुनाता है । घोर अंधकारपूर्ण मध्यरात्रि को प्रातःकाल, और गरमी के धधकते हुए दोपहर को सुहावनी संध्या बनाता है ।

दुःख यद्यपि शत्रु कहलाता है, तथापि वह मित्रता का संदेश पहुँचाता है। दुःख केवल दुःख नहीं, एक सबक़ है, जो सुख का भविष्य दिखलाता है ।

दुःख ज्ञान का दीपक दिखलाता है। जो संसार को जितना ज्यादा जानता है, उतना ही ज्यादा दुखी है।

सुख मनुष्य के अस्तित्व को भुला देता है, क्योंकि मनुष्य नहीं जानता कि वह कहाँ है। दुःख सबक़ सिखाने आता है और सबक़ सीख लेना दुःख का अन्त है। यह मनुष्य को अपने सच्चे स्वरूप का ज्ञान कराता है।

जो दुखी है, वह ज्यादा अक्लमन्द है, सहृदय है, साफ़ दिलवाला है। जो दुःख में पैदा हुआ है, उसकी नींव पक्की है, वह संसार को समझता है। जो दुःख को नहीं जानता, वह कोरा है।

दुःख मनुष्य को नवजीवन देता है। गिरते हुए को उठाता है। सोते को जगाता है। अन्धे की आँखें खोलता है। काम करने की शिक्षा देता है। मुक्ति का मार्ग बताता है।

जो दुःख की चलनी से छन गया, वह ईश्वर के बहुत निकट पहुँच गया।

दुःख को दुःख माननेवाला ईश्वर से बहुत परे है।

: ८ :

ईश्वर

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्

मेरे एक मित्र सुबह बैठे अखबार पढ़ रहे थे। दिन जाड़े के थे। पंडितजी भी तभी चारों तरफ चद्दर लपेटे आ बैठे।

"क्यों भैया, आज क्या नई बात है ?" बैठते ही पंडितजी ने पूछा ।

"लुमुम्बा मारा गया ।" मित्र ने बताया ।

"पक्की बात है ?"

"हाँ, पक्की ही दीखती है ।"

"किसने देखा उसे मारे जाते ? तो, फिर कैसे मानें ?" पंडितजी ने पूछा ।

"रायटर के संवाददाता ने पूरी पूछताछ करके यह खबर दी है ।"

"अच्छा, तो अब आप श्रुति-प्रमाण मानने लगे ! उस दिन तो आप केवल आँख-देखी ही मानते थे ।" पंडितजी ने व्यंग कसा ।

बात यह थी कि 'ईश्वर' पर चर्चा चल रही थी । पंडितजी ने श्रुति-प्रमाण दिये कि 'ईश्वर' है । मेरे मित्र ने कहा कि वह तो आँख-देखी ही मानते हैं ।

अभी उस दिन की बात है कि प्रोफेसर मार्टिन राइल छह वैज्ञानिकों के साथ शोध करके इस नतीजे पर पहुँचे कि 'ब्रह्माण्ड बनाया गया है, अपने-आप नहीं बना ।'

पृथिवी अपनी धुरी पर १००० मील प्रति-घण्टे की चाल से घूमती है। यदि वह गति घट-कर १०० मील प्रति घण्टे की हो जाती, तो हमारे दिन और रात इतने बड़े हो जाते कि दिन में तो सूर्य की गर्मी से सारी ही वस्तुएँ जल जातीं, और बची-खुची रात को बर्फ में दबकर खत्म हो जातीं।

यदि सूर्य का तापमान जो अब है उससे थोड़ा ज़्यादा होता, तो पृथिवी पर कोई भी प्राणी ज़िन्दा न रह पाता। अब, हमें ठीक इतनी गर्मी पहुँचती है, जिससे हम बर्फ में जमकर खत्म न हो जायँ। यदि चाँद अब जहाँ है, उससे नज़दीक होता, तो समुद्र में इतना ज़्यादा ज्वार उठता कि वह सबको डुबा देता।

यह आकाश-गंगा अनगिनत तारों का समूह है। उसमें खरबों तो सूर्य हैं। औसतन हर सूर्य के पाँच ग्रह हैं और पृथिवी भी है, जिनमें रहने-वाले मनुष्य से बहुत ज़्यादा सभ्य और चतुर प्राणी भी हो सकते हैं। फोर्डहम-विश्वविद्यालय के डॉ० बरथोलोम्यू नेगी तथा डॉ० डगलस हेनेसी

बहुत-से उल्कापातों की जाँच करके इस नतीजे पर पहुँचे कि दूसरी पृथिवियों पर प्राणी अवश्य हैं। पृथिवी नित-नई भी बनती जा रही है। ऐसी आकाश-गंगाएँ हज़ारों हैं और उनमें सूर्य भी इतनी दूरी पर हैं कि उनकी रोशनी पृथिवी पर पहुँचने में १ अरब वर्ष लग जाते हैं। कम-से-कम १ अरब वर्ष पहले वहाँ सूर्य थे, रोशनी पहुँचते-पहुँचते हट गये हों तो पता नहीं। किन्तु उससे भी दूर और सूर्य हैं, ऐसी धारणा है। फिर, इतने बड़े ब्रह्माण्ड में छोटे-से मनुष्य की हस्ती ही क्या? फिर भी वह ईश्वर एक-एक छोटे-से-छोटे प्राणी की खबर रखता है और उसे पुकारने पर ज़रूर सहायता करता है।

रूस ने शुक्र तारे पर राकेट भेजा है। यदि कोई मनुष्य शुक्र तारे पर जाकर वापस आता है, तो उसे केवल छह महीने लगेंगे। किन्तु इतने दिनों में पृथिवी के ३०० वर्ष पूरे हो जायँगे, और वापस आने पर उसके लिए पहचानना भी कठिन हो जायगा। राकेट बनानेवाले कारीगर का कारीगर तो उससे भी महान् है।

बच्चा जन्मते ही दूध पीना सीख जाता है, उसे सिखाया नहीं जाता। मछली जन्म लेते ही तैरने लगती है। मादा भिड़ पतिंगे को डंक मार-कर बेहोश कर देती है और उसे यत्न से रखकर उसके पास ही अण्डे देती है। अण्डों में से निकलनेवाले भिड़ को खाने के लिए पतिंगा तैयार मिलता है। मरा हुआ पतिंगा उनके लिए घातक होता है। छोटे भिड़ बड़े होकर फिर बच्चों के लिए यही करते हैं; उन्हें कोई सिखाता नहीं।

छोटा-सा तिलचट्टा ही लीजिए। वह दौड़ता है, तैरता है और उड़ता भी है। उसका शरीर ढाल से आच्छादित रहता है, फिर भी कुछ दिन भूखा रहे, तो शीशे की तरह उसमें आरपार देखा जा सकता है। उम्र उसकी मनुष्य से तीन गुनी होती है। बातचीत के लिए तिलचट्टों में रेडियो रहता है, जिसके द्वारा वे एक दूसरे से बातें करते हैं।

मधुमक्खियों के बारे में तो काफ़ी लिखा जा चुका है। किन्तु अभी आस्ट्रिया में एक प्रोफेसर ने पता चलाया है कि मधुमक्खियाँ इशारों

से बातें भी करती हैं।

रात को घूमनेवाला चमगादड़ तो रडार का जन्मदाता ही है। जब वह उड़ता है तो रडार से आवाज़ भेजता रहता है और सामने की अड़चनों का उसे तुरंत पता चल जाता है। उसके शरीर में यदि रडार नहीं रहता, तो टकराकर उसके प्राण कबके चले जाते।

हज़ारों तरह के पक्षी गर्मी में उत्तर की ओर चले जाते हैं और जाड़े में वापस दक्षिण में पहुँच जाते हैं। अलास्का से लाखों पक्षी उड़कर जाड़े में अफ्रीका आ जाते हैं। हर साल उनकी उड़ान होती है, और ठेठ अपनी जगह पहुँचकर-ही विश्राम लेते हैं। रास्ते में हज़ारों की तादाद में मरकर गिर जाते हैं, तब भी दूसरों की उड़ान जारी रहती है।

सबसे विचित्र कहानी है ईल मछली की। नदी या झील में कहीं भी पैदा हुई हो, यह मछली हज़ारों मील तैरकर बर्मुडा टापू के पास की घाटी में पहुँच जाती है। वहीं वह मरती है और बच्चे-भी वहीं देती है। इन्हें बर्मुडा का नक्शा कोई

नहीं बताता ।

इन सबको समझनेवाला तथा नित-नई महिमा की खोज करनेवाला है मनुष्य । यह तो एक चलता-फिरता कारखाना है । मनुष्य के शरीर में मशीनें लगी हुई हैं । कहीं तेजाब बनता है, कहीं आयोडीन, तो कहीं चीनी । हम लोग यूरिया बनाने के लिए लाखों का कारखाना बैठाते हैं, किन्तु मनुष्य-शरीर यूरिया निकालकर बाहर फेंकता रहता है ।

यदि शरीर में चोट से कहीं घाव हो जाता है, तो उसी वक्त मस्तिष्क में सिग्नल पहुँच जाता है और होने लगती हैं तैयारियाँ घाव भरने की। खून का दबाव एकदम गिर जाता है । खून के पिण्ड जल्दी बनकर खून गिरना रोका जाता है। यदि खून ज़्यादा निकल गया, तो स्प्लीन अपनी पूँजी में से खून तुरंत शरीर में पहुँचा देता है । खून के सेल यों पानी में रहने के आदी होते हैं, किन्तु घाव पर हवा लगकर वे सूखने लगते हैं और सूखकर फट जाने से उनमें से खून बह चलने का भय रहता है। उधर बाहर से कीटाणु के

भी अन्दर जाने का रास्ता खुल जाता है। पर सेल टूटते ही ऐसे रस उसमें से निकलते हैं, जिनसे रुई की तरह का पदार्थ, जिसे फाइब्रीन कहते हैं, पैदा होकर छिद्र बन्द कर देता है। दूषित कीटाणु मारनेवाले जन्तु पैदा होकर लड़ने के लिए तैयार खड़े हो जाते हैं। सफ़ाईवाले आकर मुर्दा तन्तुओं की सफ़ाई कर जाते हैं, और मरम्मत करनेवाले सफ़ेद सेल मरम्मत का काम शुरू कर देते हैं। ऐसा आश्चर्यजनक 'मरम्मत-घर' वही बना सकता है।

किन्तु मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषता है बुद्धि। उसी बुद्धि के सहारे आज वह स्थूल और प्राणी-जगत् में सबसे काम लेता है, और मालिक बना बैठा है। लेकिन इतनी प्रखर बुद्धिवाला भी मन के वश में होकर कभी-कभी ऐसे काम भी कर बैठता है, जैसा कि कम बुद्धिवाले पशु भी नहीं करते। भावावेश में ज्यादा बह गया, तो मृत्यु का शिकार भी हो जाता है। ऐसे वक्त यह पता नहीं चलता कि उसकी बुद्धि कहाँ चली गई। इस प्रकार की रचना करने में भी उस शक्ति का

कोई-न-कोई प्रयोजन अवश्य होगा ।

और इस मनुष्य को पैदा करनेवाला शुक्र इतना छोटा होता है कि एक चम्मच में लाखों मनुष्यों को पैदा करनेलायक कीड़े आ सकते हैं । इस छोटे-से जन्तु में अलग-अलग मनुष्य की बाप-दादा की आदतें, बुद्धि, विकार सब उसके मस्तिष्क में भरे रहते हैं । जैसी आदत और बुद्धि शुक्र में रहती है, वैसा ही मनुष्य वह बनाता है ।

सबसे बड़ा प्रमाण फिर यह भी है कि बच्चे को जैसे मां-बाप सान्त्वना देते हैं, वैसे ही यदि दुःख में कोई ईश्वर को याद करता है तो उसे शान्ति अवश्य मिलती है । भयानक-से-भयानक विपत्ति का भी मनुष्य सामना कर लेता है, और ऐसे वक्त हिम्मत देती है अन्तःकरण से निकली हुई उसकी सच्ची प्रार्थना ।

यह शक्ति केवल श्रुति ही क्या बिना आँख-वाले के सामने भी प्रकट रहती है । इसे देखने के लिए आँख की ज़रूरत नहीं पड़ती ।

'ईश्वर है' इसका प्रमाण देना उस अज्ञेय शक्ति का निरादर करने-जैसा है ।

: ९ :

'सम्भवामि युगे-युगे'

कलप-कलप प्रति प्रभु अवतरहीं।
चारु चरित नाना विधि करहीं॥

तुलसीदासजी ने यह शास्त्रों का मत बताया है। इसके पश्चात् निकला दुनिया के विकास का सिद्धान्त। लोकमान्य तिलक ने समझाया कि अवतार दुनिया के विकासवाद के ही प्रतीक हैं।

वैज्ञानिकों के मत से पहले-पहल जल-जन्तु हुए और उनसे दुनिया आगे बढ़ी। हमारे यहाँ भी पहला अवतार मत्स्य का हुआ—पानी का वासी। फिर हुआ कूर्मावतार, जल और थल दोनों पर चलनेवाला, फिर वाराह अर्थात् ज़मीन पर रहनेवाला। इसके बाद नरसिंह, आधा मानुस और आधा पशु। मनुष्य का पहला रूप हुआ बावन, छोटा मनुष्य, तत्पश्चात् परशुराम, फिर श्रीराम, बारह कला के अवतार। कृष्णावतार में पूरी सोलह कलाएँ आईं और यह था मनुष्य का पूर्ण विकास।

किन्तु शारीरिक विकास के साथ-साथ यह

जानने की बात है कि बौद्धिक विकास भी होता ही है। धर्म की व्याख्या है कि जो धारण किया जाय, वह धर्म है। जो समाज के माने हुए नियम हैं, कानून हैं, बुरे-भले का ज्ञान है, वह है धर्म। जब-जब धर्म की क्षति होती है, तब-तब अवतार होता है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है :

यदा-यदा हि धर्मस्य,
ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य
तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

——"जब-जब धर्म की ग्लानि, अर्थात् हानि और अधर्म की प्रबलता होती है, तब-तब मेरा अवतार होता है।"

विकास-सिद्धान्त के अलावा हम यों भी कह सकते हैं कि जब क्षत्रियों का अत्याचार बहुत बढ़ गया तो परशुराम ने जन्म लिया और उन्होंने क्षत्रियों के आधिपत्य का अन्त किया।

समाज में नियम-शृंखला ढीली पड़ी, तब श्रीराम का जन्म हुआ, और उन्होंने लोक-मर्यादा स्थापित की। 'मर्यादा-पुरुषोत्तम' इसीलिए वह

कहलाये। श्रीकृष्ण ने गीता के द्वारा अर्जुन को कर्मयोग का उपदेश किया।

श्रीकृष्ण के बाद यज्ञों में नृशंस पशु-हत्याएँ होने लगीं, लाखों प्राणी कटने लगे तो बुद्ध आये और उन्होंने अहिंसा का प्रचार किया। पीछे बौद्ध धर्म में भी अकर्मण्यता का विकार आ गया और तांत्रिकवाद ज़ोरों से फैलने लगा, तब आये शंकराचार्य और उन्होंने वेदान्त का डंका बजाया।

वेदान्त के नाम पर लोग जब अपने-आपको-ही 'सोऽहं सोऽहं' का जप करते हुए ईश्वर मानने लगे तो भक्ति-युग का प्रादुर्भाव हुआ। मीरांबाई ने 'मेरे तो गिरधर गोपाल' की तान छेड़ी। संत तुकाराम आये। चैतन्य महाप्रभु ने श्रीकृष्ण के नाम की रट लगाई। सूरदास ने कृष्ण-लीला की मधुर झाँकी दिखाई। वाल्मीकि ने राम को मनुष्य मानकर रामायण लिखी थी, किन्तु तुलसीदास ने राम को भगवान् बना दिया और जगह-जगह राम-नाम की धुन गूँज उठी।

२

जगह-जगह छोटे-बड़े भक्तों ने, संतों ने, भक्ति-

भाव जागृत किया और नास्तिकता का अन्त किया।

ईसाई भी मानते हैं कि ईसा का फिर से अवतार होगा। हिन्दू तो कल्कि अवतार की बाट ही देख रहे हैं। इस ज़माने में भी जब अंग्रेज़ी शासन से हिन्दुस्तान दबा पड़ा था, किसीकी मुँह खोलनेतक की हिम्मत न थी, महात्मा गांधी आ गये। उन्होंने सत्याग्रह का पाठ पढ़ाया। लोगों में हिम्मत आ गई, अपने देश को अपना देश और अपनी सभ्यता को उच्च सभ्यता समझने लगे और उसके लिए गर्व भी करने लगे।

अवतार तो रोज़-रोज़, क्षण-क्षण में ही हो रहे हैं। जहाँ एक की क्षति हुई और दूसरी चीज़ ज्यादा बढ़ी कि उसको सम करनेवाला पैदा हो जाता है।

वैज्ञानिक कहते हैं कि पहाड़ भी बढ़ते हैं। किन्तु पहाड़ की चोटी पर हवा का वेग इतना होता है कि जितने वे बढ़ते हैं, हवा उतना ही उन्हें घिस देती है और अन्त में ऊँचाई उतनी ही रह जाती है।

जहाँ नदी में बाढ़ आई और पानी बढ़ा कि पानी नीची ज़मीन की ओर आकर्षित होकर बह जाता है और फिर उसकी सतह समान हो जाती है।

कलकत्ते में, अलीपुर में, एक बाग है। अक्सर वहाँ रहनेवाले, जिनको टहलने का शौक़ है, सुबह टहलने जा पहुँचते हैं। एक बार देखा गया कि हठात् इस बाग में स्थित तालाब में बहुत सारे केंकड़े हो गये। कुछ दिनों बाद देखा गया कि बड़े-बड़े चूहों ने तालाब के चारों ओर बिल बना लिये और केंकड़ों का विनाश करने लगे। जब केंकड़े खत्म हो गये तो चूहे बाग में नुकसान करने लगे। साग-भाजी बोई जाती तो बीज खा जाते। फूलों पर भी हमला करने लगे। मालियों के नाकोंदम आ गया। किन्तु एक दिन कई बिल्लियाँ आ पहुँचीं और लगीं करने चूहों का काम तमाम। धीरे-धीरे चूहे गये, बिल्लियाँ भी गईं और फिर समभाव आ गया। आस्ट्रेलिया में घेरा डालने के लिए किसीने थौर लगाया। फिर थौर इतना बढ़ा कि खेत, गाँव सब उजाड़ हज़ारों मीलों में

फैल गया । अपने-आप ऐसे कीड़े पैदा हो गये कि उन्होंने थौर को खा-खाकर उसे खत्म कर दिया ।

ठण्ड में, हिम के कारण, पेड़ों की जब बुरी हालत हो जाती है तो बसन्त आकर उन्हें बचाता है । गर्मी से लोग व्याकुल होते हैं तो वर्षा आकर सुख पहुँचाती है । रात के बाद दिन हो ही जाता है, यहाँतक कि यदि आँख में मिट्टी का कण पड़ गया तो पानी का फव्वारा अपने-आप आंख में चल पड़ता है और आँख धुल जाती है । शरीर पर कहीं चोट लगी, घाव हो गया तो सफेद कार्पसल अपने-आप पैदा हो जाते हैं और घाव का भरना शुरू कर देते हैं ।

देश में जगह-जगह राजाओं का राज्य था । राजाओं के अत्याचार बढ़े तो उपद्रव शुरू हुआ और प्रजातन्त्र आया । प्रजातन्त्र कुछ न कर सका तो अनन्य शासक आये । जहाँ उन्होंने धाँधली की, वहाँ वे भी उठ गये ।

धर्म की ग्लानि नहीं बढ़ सकती । बढ़ी कि अवतार आया । क्षण-क्षण, दिन-दिन अवतार होते हैं और होते रहेंगे । भगवान् की लीला यही है ।

: १० :

वह पूँजीपति !

पूँजी—धन का अर्थ संस्कृत में है 'दधन्ति, फलन्ति' । जो फलनेवाली चीज़ है, वह है धन । धन-धान्य, फलनेवाले वृक्ष, सभी धन हैं । जिसके पास ऐसा धन है, वह पूँजीपति है । किन्तु आज का अर्थ तो उस आलोच्य व्यक्ति से है, जिसने

वाणिज्य में कुछ पूँजी इकट्ठी कर ली हो।

चाहे वकील बड़ा धनपति हो, या अच्छी प्रैक्टिसवाला डॉक्टर, जिसने बहुतों से ज्यादा पैसा इकट्ठा किया हो, किन्तु ये दोनों ही निन्दनीय पूँजीपति नहीं हैं। आज वही पूँजीपति कहलाने का अधिकारी है, जो व्यवसाय में सफलता प्राप्त कर आराम से रहता हो।

खासकर विद्यालयों और विश्वविद्यालयों के छात्रों में इस प्रकार के विचार बहुत प्रबल देखने में आते हैं। विश्वविद्यालय का स्नातक चाहे कितना ही तीव्र बुद्धिवाला क्यों न हो, उसके मतानुसार व्यवसाय करना बुरा समझा जाता है। यह एक तरह की रूढ़ि-सी बन गई है कि भले आदमी वाणिज्य-व्यवसाय नहीं किया करते। 'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः' यह बात अमान्य है। उसका मानना है कि हाथ से काम करके जैसे हाथ मैले होते हैं, वैसे ही वाणिज्य से आत्मा पर मैल चढ़ता है। यद्यपि यह मत प्रकट कम किया जाता है, तथापि उसकी चाल-ढाल पर इसका असर रहता है।

यदि किसी कारणवश उनको व्यवसाय करना भी पड़ता है तो मानते हैं कि कामचलाऊ ढंग पर वाणिज्य करना चाहिए। व्यवसाय को वैज्ञानिक ढंग से, सुचारु रूप से, करना बड़प्पन नहीं है। वे पंचतन्त्र की इस सूक्ति के पूरे ख़िलाफ हैं :

यत्रोत्साह समारम्भो यत्रालस्यविहीनता।
नयविक्रमसंयोगस्तत्र श्रीरचला ध्रुवम् ॥

—"जहाँ उत्साह से नये-नये कार्यों का आरम्भ किया जाता हो, आलस्य का कहीं नाम भी न हो, जहाँ नीति और पराक्रम का भी कार्य-प्रणाली में योग हो, वहाँ लक्ष्मी अवश्य अचल रहती है।"

उनके मतानुसार बजाय व्यवसाय में फलीभूत होने के, किरानी बनना कहीं अच्छा है, क्योंकि व्यवसाय की सफलता उनका पतन कर देगी।

कहते हैं, छोटा-सा जानवर नेवला बहुत अन्वेषणशील होता है। उसकी खोज दिनभर जारी रहती है और वह चूहों और साँपों के बिल खोज-खोजकर निकालता रहता है। हमारा ख़याल है कि अंग्रेज़ लेखक किपलिंग ने पहले-पहल लिखा

था कि नेवला-परिवार का नारा है—"जाओ और खोजो।" किन्तु ऐसा अन्वेषण करनेवाले बहुत कम होते हैं। एक सफल व्यवसायी दिनभर नये-नये विचारों और कामों की खोज में लगा रहता है, जिससे कि उसका काम और सुचारु रूप से हो।

वह गुरु बनाने से नहीं झिझकता। उसका एकमात्र ध्येय होता है उत्तरोत्तर उन्नति करना, इसलिए नई बात सीखने में उसे हिचक नहीं रहती।

व्यवसायी जन्मपत्री पर विश्वास नहीं करता, उसका कर्म-पत्री पर अटल भरोसा रहता है। वह दुनिया को समझने की बराबर इच्छा रखता है, क्योंकि बिना इसके व्यवसाय में सफलता नहीं मिलती। रोग बढ़े तो डाक्टर पनपता है, झगड़ों में वकील की बन आती है। किन्तु व्यवसायी का तो स्वप्न यह है :

सर्वेऽत्रसुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।

किन्तु इन सदिच्छाओं का स्वप्न लेते हुए भी आखिर वह तो टीका का ही पात्र है।

: ११ :

नर बड़ा या नारायण ?

उस दिन बात चल रही थी कि कोई-कोई नेता ही ऐसा होता है, जिसका लोगों पर जादू चलता है। बात यह है कि जबतक आम लोग यह नहीं देखते कि उनका नेतृत्व करनेवाला उनकी तरह ही एक नर है, इन्सान है तबतक उन्हें श्रद्धा-भक्ति तो होती है, किन्तु उत्साह नहीं होता। उनपर पूरा जादू नहीं चलता।

होली के दिन थे। डफ़ पर गीत चल रहा था। "ब्रजमंडल देस दिखादे रसिया, ब्रजमंडल।" मेरे मित्र ने कहा, "खूब है अबकी होली की धूम!"

"हर साल होली ऐसे ही होती है। अपने-अपने मन के भावानुसार कभी कम दीखती है, कभी ज्यादा।"

बचपन से देखता हूँ, शायद ऐसी ही होली बराबर होती है। किसी साल मन प्रसन्न रहा, तो वह दौड़ता है उसमें भाग लेने। नहीं तो अक्सर लोग अपने-अपने विचारों में लीन रह

जाते हैं।

इतने में एक घर से ग्रामोफोन-रेकार्ड की सुरीली आवाज़ आई, "कृष्ण मुरारी बिनती करत कर हारी।"

पहली रात को जब होली मँगलाने गये, तो बड़े-बूढ़े जयकार कर रहे थे, "मोर-मुकुट-वंशी-वाले की जय।"

प्रह्लाद को भगवान् ने होली की गोद से बचाया था। उस भगवान् को चाहे विष्णु कहो, चाहे राम या कृष्ण। किन्तु जयकार विशेष रूप से मोर-मुकुट-वंशीवाले की क्यों? कीर्तन और भजनों में भी कृष्ण-लीला ही गाई जाती है।

महाराजा मनु ने वृद्धावस्था में घोर तप किया। भगवान् प्रसन्न हुए, दर्शन दिया। वर माँगा मनु ने "चाहउँ तुम्हहि समान सुत, प्रभुसन कवन दुराउ।" भगवान् ने "तथास्तु" कहा और उसी दिन अंकित हो गई इक्ष्वाकु-वंश की महत्ता, उच्चता।

इक्ष्वाकु-वंश में हुए भी बड़े-बड़े व्यक्ति, जिन्होंने एक-से-एक बड़े कार्य किये। महाराजा

सगर ने ३२००० वर्षतक तपस्या की। उसी वंश में हुए भगीरथ, जिन्होंने गंगा को मृत्युलोक में ला उतारा। तबसे गंगा का नाम भी 'भागीरथी' हो गया।

इसी कुल में हुए राजा दिलीप, जिन्होंने गुरु की गाय के बदले अपना शरीर सिंह के अर्पण कर दिया। महाप्रतापी रघु हुए, जिनकी बात सदा अटल रही। और दशरथ के रूप में हुआ महाराजा मनु का अवतार। ऐसे जगत-उजागर वंश में जन्मे राजा राम।

वसुदेव यादव-कुल के एक राज-घराने के थे। किन्तु कुल का कोई शील और पहचान नहीं। न तो इस कुल का वैसा इतिहास ही लिखा गया, न उसमें ऐसे प्रतापी राजा ही हुए और न भगवान् ने किसीको वर दिया कि वह यादव-कुल में जन्म लेंगे।

जब धरती पर रावण का अत्याचार बढ़ा, तो देवताओं ने रक्षा की प्रार्थना की। भगवान् ने मनु को दिया हुआ वरदान याद करके देवताओं को आश्वासन दिया कि "मैं स्वयं अवतीर्ण

होकर तुम लोगों की रक्षा करूंगा।"

कृष्ण-जन्म के लिए न तो देवताओं ने वैसी प्रार्थना की, और न भगवान् ने किसीको वैसा वरदान ही दिया। हाँ, कंस ने अन्तरात्मा की पुकार ज़रूर सुनी कि "देवकी के गर्भ से तुझे मारनेवाला पैदा होगा।" किन्तु उस अन्तर्वाणी का उसपर उल्टा ही असर पड़ा।

भगवान् ने देवकी के गर्भ से जन्म लिया, किन्तु न स्वर्ग में दुन्दुभी बजी, न फूलों की वर्षा हुई। भगवान् राम का नामकरण ब्रह्मा के पुत्र महामुनि वशिष्ठ ने किया। कृष्ण बिना नामकरण के केवल वासुदेव ही कहलाये।

राम-जन्म की बधाई गाते-गाते लोग नहीं अघाये। महाराजा दशरथ के आनन्द-उल्लास का तो कहना ही क्या था।

कृष्ण के जन्मते ही बेचारे वसुदेव को उस काली भयावनी रात में छिपकर गोकुल जाना पड़ा, और जन्म का पता चलते ही खुशी मनाई गई एक निरीह बालिका की बलि से। चीत्कार कर उठी वह बालिका, "रे पापी! तेरा मारने

वाला तो पैदा हो चुका।" कंस ने यह सुनकर सारा राग-रंग बन्द करा दिया।

रामचंद्र बड़े हुए। माता-पिता का मन हुलसने लगा। राजा का महल किलकारियों से गूँज उठा। पर बालक कृष्ण को देखिये। पूतना चुपचाप स्तन-पान कराकर बाल-वध का बीड़ा लेकर आई। जहाँतक और लोगों का सम्बन्ध था, वह सफल भी रही। हाँ, कृष्ण ने स्वयं ही अपनी रक्षा की, वह दूसरी बात।

जहाँ राम के मुँह से एक बात निकली, माता कौसल्या ने दो काम पूरे कराये। कृष्ण तो इसी मिन्नत करने में रहे, "मैया मेरी, मैं नहिं माखन खायो।" या "मैया, मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।"

महर्षि विश्वामित्र ने यज्ञ-कार्य सम्पन्न करने के लिए महाराजा दशरथ से माँग की राम को साथ ले जाने की। महाराजा इन्कार कर गये। यदि विश्वामित्र की जगह कोई और होता, तो बात वहीं खत्म हो जाती। राम ने ताड़का का वध किया। मारीच राक्षस को दूर फेंक दिया, तो महर्षि फूले न समाये और इस बात का

मिथिला तक प्रचार किया ।

कृष्ण ने नंद बाबा की गायें चराते-चराते बकासुर को भी खत्म कर दिया । और भी छोटे-मोटे कई राक्षस मारे, किन्तु कहीं कोई खास चर्चा नहीं चली ।

राम के गुरु थे ब्रह्मा के पुत्र महाज्ञानी वशिष्ठ और उन्हें धनुर्विद्या सिखाई राजर्षि से ब्रह्मर्षि होनेवाले महान् मुनि विश्वामित्र ने । तहाँ कृष्ण को विद्या सिखानेवाले थे उज्जैन के सीधे-सादे ऋषि संदीपन ।

राम ने रावण का वध किया भारी वानर-सेना लेकर, बड़े-बड़े यशस्वी नायकों के साथ । और कृष्ण ने अपने बड़े भाई बलराम के साथ जाकर अकेले ही कंस को दे पटका। न तो उनके साथ कोई सेना चली, न कोई नायक ।

बलराम को और कोई हथियार न मिला, तो हल लेकर ही निकल पड़े और 'हलधर' कहलाने लगे । राम के साथ चलते थे कई धनुष और सैकड़ों बाण, पर कृष्ण की अंगुली पर तो एक चक्र ही रहता था ।

राम पहुँचे मिथिलेश की नगरी में। राजा जनक से लेकर छोटे-से-छोटे भी प्रार्थना कर-कर मनाने लगे कि किसी तरह शिवधनुष हल्का बन जाय। जबतक धनुष-भंग नहीं हुआ, सभी वहाँ चिन्तित रहे।

यहाँ रुक्मी, खास रुक्मिणी का भाई, यह नहीं चाहता था कि कृष्ण रुक्मिणी का नाम भी ले।

जैसे ही धनुष भंग हुआ सीता ने माला पहनाई। महाराजा दशरथ बारात सजाकर जनकपुर पहुँचे। बड़े उत्साह और उत्सव के साथ विवाह हुआ।

कृष्ण को घरवालों का सहयोग कहाँ, उनसे लड़ाई लड़नी पड़ी। रुक्मिणी को रथ में बैठा-कर द्वारिका को दौड़े, विवाह का उत्सव मनाना तो दूर।

सती साध्वी सीता, फिर गर्भवती। ऐसी पत्नी को केवल लोकापवाद के डर से देश-निकाला दे दिया राम ने। स्वप्न तो दूर की बात, उससे भी परे, जिस स्त्री के परिधानों को भी परपुरुष की हवा न लगी हो, ऐसी सीता की

दुःख-गाथा का क्या कहना ।

द्रौपदी पर-स्त्री, जिसके पाँच पति, उसकी आधी पुकार पर ही सबकुछ छोड़कर कृष्ण दौड़ पड़े । मुँह पर लगा विदुर का साग भी न पोंछ पाये । चीर उसका बढ़ाया तो ऐसा कि खेंचते-खेंचते दुःशासन जैसा वीर भी थककर चुपचाप बैठ गया ।

राजा राम महान् थे । चौदह साल भरत ने उनकी खड़ाऊँ सिंहासन पर रखकर राज्य चलाया ।

युधिष्ठिर ने यज्ञ किया । कृष्ण को काम सौंपा गया अतिथियों के पैर पखारने का और जूठी पत्तलें उठाने का । बड़ी लगन से उन्होंने यह कर्त्तव्य निभाया ।

सत्यप्रतिज्ञ राम के जैसा कोई दूसरा नहीं हुआ । व्रत निबाहने में पिता की भी मृत्यु हो गई, किन्तु सत्य का व्रत पूरा पाला ।

कृष्ण अर्जुन के सारथी बने । शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा कर बैठे थे, किन्तु जब भीष्म ने न माना, तो भक्त की प्रतिज्ञा के सामने अपनी बात

भूल गये, और उठा लिया अंगुली पर चक्र ।

राजा राम भगवान् थे, और भगवान् की बड़ी भक्ति से पूजा होती है । आदर से लोग मस्तक नवाते हैं और जय-जयकार करते हैं । भगवान् कृष्ण नारायण थे, पर हो गये नर और सबके रोम-रोम में रम गये । नर ने सबके दिल में घर बना लिया ।

"रघुपति राघव राजाराम" की धुन खूब चलती है। पर "होरी खेलत नन्दकुमार" गाकर होली के दिनों में लोग एकदम मस्त हो जाते हैं।

भक्त नम्रता से पाठ करता है "पतित पावन सीताराम ।" किन्तु मीरां तो पागल ही हो गई "मेरे तो गिरधर गोपाल" में ।

कृष्ण कन्हैया की जय बोलकर "अबको टेक हमारी, लाज राखो गिरधारी ।" में भक्त अपना हृदय निकालकर रख देता है ।

"प्राण जाय बरु वचन न जाई" ऐसे सत्य-प्रतिज्ञ राम कुल बारह कला के अवतार थे । सत्य की मर्यादा का बखान करते-करते भक्त नहीं थकता । किन्तु ज्ञानी पैठता है "प्रजहाति

यदा कामान्" में, और मनुष्य पहुँच की पराकाष्ठा पर पहुँचने की कोशिश करता है। महाभारत चारों तरफ ज़ोर से चलता है और यहां सोलह कलावाले कृष्ण के बताये हुए ज्ञान के कणों से कुछ बचाव होता हो, तो हो।

चाहे होली का खिलाड़ी हो, या भक्ति-रस में डूबा हुआ पागल, चाहे मीरां विरहिणी का गीत हो, चाहे हिमालय में सब त्यागकर "सुख-दुःखसम" समझनेवाला वैरागी, नर सबके रोम-रोम में ऐसा रम गया कि बिना जाने ही कहीं-न-कहीं याद आ ही जाता है। कहीं-न-कहीं एक तंतु बज ही उठता है। देवता की आज्ञा से लोग मृत्यु की राह चले जाते हैं। किन्तु नर के साथ वह अपने-आप हँसते हुए मृत्यु के घाट उतर जाते हैं।

तब यह सच ही कहा है--

हमने माना हो फरिश्ता शेख़जी,
इन्सान बनना तो मगर दुश्वार है।

: १२ :

सजग गुरु

कहते हैं कि दत्तात्रेय ने चौबीस गुरु बनाये थे। जहाँ भी किसीसे कुछ सीखने को मिला, उन्होंने सीखा।

पृथिवी से उन्होंने धैर्य, क्षमा और परोपकार

सीखा। पृथिवी सबकुछ सहन करके भी प्रतिशोध की भावना नहीं रखती। सभीको कुछ-न-कुछ प्रदान ही करती रहती है।

वायु ने सिखाया ज़रूरत से ज्यादा संग्रह न करना। वायु एक जगह से दूसरी जगह वस्तु पहुँचा तो देती है, किन्तु अनचाही वस्तु उसमें टिकती नहीं, गिर पड़ती है।

आकाश ने शिक्षा दी अलिप्त रहने की। बादल, धुवाँ या भाप आकाश के ऊपर पर्दे की तरह आच्छादित होते हैं, किन्तु आकाश को अपने में लिप्त नहीं करते।

इसी तरह मधुमक्खी से सीखा दूसरों के निमित्त काम करना याने शहद इकट्ठा करना।

और नन्हें-से बच्चे से स्वच्छ निर्विकार हृदय रखना सीखा। मतलब यह कि जहाँ किसी-में महिमा देखी उन्होंने उसे ग्रहण कर लिया।

हमारा गुरु तो निरन्तर सामने ही रहता है। ऐसा अथक गुरु बड़े भाग्य से मिलता है। न उसे सोने की फुर्सत और न विश्राम की। वह गुरु है प्रकृति।

प्रकृति कभी निठल्ली नहीं बैठती। चौबीसों घंटे काम में जुटी रहती है। शीतकाल हो या ग्रीष्म, वर्षा हो या बसन्त काम उसका बराबर जारी रहता है।

भूकम्प आया, हरी-भरी फुलवाड़ी उजाड़ गया। पर उसके खत्म होने के पहले ही प्रकृति ने फिर सिर्जन शुरू कर दिया। बाढ़ आई, और सबकुछ बहा ले गई, पर सर्वनाश के पहले ही फिर से काम शुरू हो गया। और शायद वह नाश किसी मतलब से, लाभ पहुँचाने के लिए ही, किया हो ? यह कितनी बड़ी शिक्षा है कि प्रकृति क्रियाहीन कभी नहीं होती।

हमें मुँह एक मिला है, पर कान दो, इसलिए कि बातें कम करें, और सुनें ज्यादा। जीभ एक है, पर हाथ दो हैं, इसलिए कि हुक्म कम दें, पर काम ज्यादा करें। खानेवाला पेट एक, और चलने के लिए पाँव दो। कूटकूटकर प्रकृति यही बताती है, कम लो और दो ज्यादा।

आम का पेड़ किसीसे कुछ नहीं चाहता,

पर बिना माँगे आम खिलाता है। उसे खुराक के लिए खाद की भी ज़रूरत नहीं पड़ती। पतझड़ में पत्तियाँ गिरकर खाद बन जाती हैं, वही खाद उसके लिए काफ़ी होती है।

मां का स्तन तो एक बड़ी चमत्कारी कारीगरी है। इसके भीतर १५, २० दूध पैदा करनेवाले पेड़ हैं। बिना जड़वाले इन पेड़ों का तना स्तन-मुख में आकर एक हो जाता है। यह १५, २० तने दूध भरने के बड़े टोकने हैं। दूध को तने में पहुँचाने और उसे इकट्ठा करके रखने के लिए इस पेड़ की शाखाएँ भी बना दी गई हैं और इसके पत्ते दूध पैदा करते हैं।

बच्चा पैदा होने पर पहले-पहल स्तनों से पीला-पीला शर्बत-सा निकलता है, जो बच्चे के लिए जुलाब का काम करता है। यह बच्चे के पेट में इकट्ठे कफ, आंव सब साफ कर देता है। साथ ही, इस शर्बत में एक तरह का पदार्थ रहता है, जो बच्चों की रोगों से रक्षा करने में मदद करता है। तीन-चार दिन बाद खांटी दूध निकलने लगता है, जो बच्चे के लिए आदर्श

खुराक है। जब बच्चा बड़ा होता है और उसे ज्यादा दूध की ज़रूरत होती है, तब अपने-आप दूध ज्यादा पैदा हो जाता है। प्रकृति भरसक रक्षा के साधन जन्म के साथ ही पैदा कर देती है।

पहला घोड़ा दस इंच ऊंचा था, उसे बचाव करने में कठिनाई होती थी। प्रकृति ने धीरे-धीरे आकार बढ़ाकर उसे आज का घोड़ा बना दिया, और वह मनुष्य के लिए उपयोगी भी हो गया।

मछली से बना बन्दर और फिर मनुष्य, मगर कम अक्लवाला। बिना तीव्र बुद्धि के इसका निर्वाह कठिन था। प्रकृति ने इसका दिमाग़ विकसित किया, और मनुष्य जाति इसीलिए फली-फूली।

किन्तु उन्नत होने के लिए स्वयम् प्रयत्नशील बनना पड़ता है। यह बात पूर्ण सत्य है कि चाहनेवाला इतना ऊँचा चढ़ सकता है कि स्वयम् ईश्वर से एकाकार हो जाय।

प्रकृति प्रगतिशील है। जिसने भी प्रगति में बाधा दी, या पिछड़ गया वह खत्म हो गया।

कई डिनोज़र-जैसे महाकाय पशु दुनिया से समाप्त हो गये। गगनचुम्बी 'डोडो' खत्म हो गया, पर उसका छोटा भाई 'दन्ती कबूतर' अब भी बचा हुआ है। रेंगनेवाले कुछ बड़े पशुओं ने प्रकृति का साथ दिया, जो आज भी मगरमच्छ और घड़ियाल के रूप में जीवित हैं।

प्रकृति का एक बड़ा नियम है, सतत प्रगतिशील रहना। मनुष्यों की दौड़ में भी जो समयानुसार प्रगति नहीं करता, वह पिछड़कर वहीं-का-वहीं रह जाता है। प्रयत्नहीन की रक्षा प्रकृति नहीं किया करती है।

मस्तिष्क के अलावा मनुष्य का एक और बड़ा गुण है। वह है भावना में बहनेवाला जन्तु। भावना में बहकर उसने प्रकृति को दूसरे रूप में भी देखा और उसके अन्तर से निकल पड़ी कविता की रस-धारा। तितलियों के रंग-बिरंगे पंख देखकर चल पड़ी उसकी कूंची और पैदा कर दिये वैसे ही विविध रंग। गुलाब की कोमल पंखड़ी देखकर भावनामय मनुष्य ने बनाया वैसा ही नरम चमकीला मखमल।

प्रकृति से सीखा विज्ञान भी। मनुष्य की बुद्धि दौड़ने लगी, जब उसने देखा एक छोटा-सा चौतरफा घूमनेवाला फोटू खींचने का कैमरा। दोनों आँखें अपने-आप वस्तु को देखकर लेंस केन्द्रित कर लेती हैं, और मस्तिष्क फोटो देख लेता है।

चमगादड़ को उड़ते देखा, तो खोज होने लगी राडार की। डोलफीन मछली बड़ी तेज चाल से पानी में दौड़ लगाती है और तीस फुट तक एकदम मैले पानी में देख भी लेती है। मनुष्य ने सोचा, क्यों न पनडुब्बी बनाई जाय।

रैटल सांप अपने दुश्मनों के पास उसके तापमान द्वारा रास्ता खोजकर पहुँच जाता है। जहाँ से कोई भी निकला, उसकी गर्मी चाहे कितनी ही कम हो वहाँ रह जाती है। यह सांप एक डिग्री के हज़ारवें भाग तक की गर्मी को माप लेता है, और उसी गर्मी के अन्दाज़ से रास्ता खोजकर दुश्मन तक पहुँच जाता है। वैज्ञानिकों ने इससे सीखा निशानभेदी फुर्दंडी

बनाना। फुर्दंडी गर्मी के माप से खोज निकालकर दुश्मन के विमान तक पहुँच जाती है, और उसे नष्ट कर देती है।

मिस्टर और मॅडम क्यूरी ने देखा किसी-किसी धातु में एक चमकीला पदार्थ, जो अंधेरे में भी जुगनू की तरह चमकता रहता है। उन्होंने खोजा, तो मिला 'रेडियम' जो कैंसर-जैसी घातक बीमारी में बड़ा उपयोगी साबित हुआ।

जाड़े में शिथिल होकर कई जन्तु पड़े रहते हैं। उनमें केवल जीवन रहता है, बाकी क्रियाएँ लगभग बन्द हो जाती हैं। इससे डॉक्टरों ने सीखा मनुष्य को बर्फ द्वारा लम्बी निद्रा में सुलाना। फेफड़े या मस्तिष्क में ऑपरेशन करने के लिए यह आविष्कार बहुत सफल हुआ।

अब मनुष्य अपनी सबसे बड़ी देन अपने निज के मस्तिष्क की नक़ल करने के प्रयत्न में संलग्न है। कुछ छोटे बिजली के मस्तिष्क बने भी हैं, जो कई कठिन गुत्थियाँ सुलझा लेते हैं। जितना ज्ञान आजतक मनुष्य को प्राप्त हो गया, उतना यदि इस मस्तिष्क में भर दिया जाय, तो

बिना विशेष प्रयत्न के वह भावी संतति को मिल जायगा। पर इस मस्तिष्क में ज्ञान उतना ही होगा, जितना मनुष्य जानता है।

इंग्लैंड के डॉक्टर ग्रेवाल्टर ने एक विचित्र कछुवा बनाया है। इसके अन्दर रखी बैटरी से यह उनकी प्रयोगशाला में चक्कर काटता रहता है। सामने अड़चन आने पर अपने-आप बचकर निकल जाता है, और बैटरी में बिजली कम होने पर लौटकर अपने घर में घुस जाता है। घर में लगे स्वीच से बैटरी में बिजली भर जाती है और कछुआ बाहर निकलकर फिर चक्कर लगाना शुरू कर देता है। यह सब होता है, पर डॉ० ग्रे-वाल्टर की करामात से ही।

मनुष्य जैसा होता है, उसकी भावी संतति वैसी ही बनती है। स्वभाव, आदतें बहुत-कुछ अपने मां-बाप से मिलती हैं। जो प्रयत्न करके आगे बढ़ गया, वह खुद भी चढ़ गया और अपनी सन्तान को भी एक बड़ी पूँजी सौंप गया। प्रयत्न करनेवाले की प्रकृति सदा सहायता करती है।

प्रकृति दृढ़ निश्चयवाली है। अपनी पकड़ जल्दी छोड़ती नहीं। संसार में दृढ़ निश्चयवाला मनुष्य ही ऊँचा उठता है।

प्रकृति सजीव है। चारों तरफ सजीव पदार्थ भरे पड़े हैं। यदि पदार्थ सजीव नहीं होते, तो मनुष्य का भी सजीव रहना असम्भव था। मनुष्य का भी सबके साथ उतार-चढ़ाव होता है। यदि वह उनका साथ न दे, तो गिर जायगा। वह उन साथियों के साथ दौड़ता रहकर ही सजीव रह सकता है।

प्रकृति ठगना नहीं जानती। वह सीधा रास्ता दिखाती रहती है। उसकी महिमा चारों ओर बिखरी पड़ी है। बस, आँखें खोलकर देखने भर की ज़रूरत है। इस सीधे रास्ते पर हम चलें, तो न जवानी की भूल हो और न बुढ़ापे का क्षोभ।

कवि ने गाया, 'गुरु बिन कौन बतावे बाट'। सजग गुरु तो साथ ही है, उसे पूछते रहें, तो बाट कोई भूलनेवाला नहीं।

विचार-प्रेरक निबंध

१. **जीवन और शिक्षण**
—विनोबा

२. **राजनीति से दूर**
—जवाहरलाल नेहरू

३. **जीवन-साहित्य**
—काका कालेलकर

४. **रूप और स्वरूप**
—घनश्यामदास बिड़ला

५. **साहित्य और जीवन**
—बनारसीदास चतुर्वेदी

६. **युगधर्म**
—हरिभाऊ उपाध्याय

७. **अशोक के फूल**
—हजारीप्रसाद द्विवेदी

८. **कल्पवृक्ष**
—वासुदेवशरण अग्रवाल

९. **यों भी तो देखिये !**
—वियोगी हरि

एक रुपया